अध्याय-छः

भारत के मुख्य चार धर्मों की सार्वभौमिक एकता द्वारा नैतिक शिक्षा

[1] धर्मों और विज्ञान के एकत्व द्वारा नैतिक शिक्षा का बीजवृक्षारोपण
[2] सभी धर्मों के बौद्धिक पक्ष या ज्ञान मार्ग में पाये जाने वाले समान सत्य
[3] भक्तिमार्ग में पाये जाने वाले समान सत्य
[4] कर्म मार्ग में समान बालें
भारत के मुख्य चार धर्मों की सार्थक एकता द्वारा नैतिक शिक्षा

[1] धर्मों और विज्ञान के एकत्र द्वारा नैतिक शिक्षा का बीजारोपण

जहाँ एक और धर्मनिरपेक्ष शिक्षा और नैतिक शिक्षा की वर्तमान प्रचलित स्थिति को देखकर दुख होता है, वहाँ सभी धर्म ग्रंथों के सिद्धांतों में व्याप्त सार्थक एकता, समान नैतिक शिक्षाओं, सहिष्णुता व समन्वय को देखकर आशा की किरण जागती है और धर्मनिरपेक्षता की विधायक अवधारणा प्रकाशित होती है। जो पक्षपात रहित होकर सब धर्मों के प्रति सहज समादर प्रकट करती हुई, सम्पूर्ण मानवता को एक दूसरे के प्रेम बंधन में बौद्धिक, समझौते एवं व्याप्त एक ही 'स्व' के राज्य को संस्थापित करने की संभावना को प्रबल बनाती है। यह अवधारणा मानव को उसकी अनन्त-शक्ति का दिर्दर्शण कराने के साथ ही स्वामुशासित करती है, स्वावलंबी व सदाचारी बनाती है।

विश्व के सभी प्रमुख धर्मों की निरपेक्षता, समानता और एकता को प्रकाशित कर नेता की सारी भाषाओं को मिटाती हुई, धर्म व विज्ञान को एक ही सत्य के दो पक्ष प्रतिपादित करती है। यह अवधारणा मानवता को पूर्ण आश्वासन देती है कि इससे विश्व में सर्वत्र नैतिकता, सदाचार, सुख, शान्ति संस्थों और समृद्धि आ सकती है, धर्म और विज्ञान का समस्या ही सहज स्थिति है। यह धारणा व्यवहारिक होने के साथ ही किसी भी प्रकार के अतिवाद से परे है।

बिंदुन धर्मों की सार्थक एकता की शिक्षा, भारतीय संविधान की धर्मनिरपेक्षता के अनुसरणों के अन्तर्गत दी जा सकती है। संविधान का अनुसरण-27 यथापि, ऐसी शिक्षा की सीमा अनुमति देता है परन्तु भारतीय विद्यालयों में इसका अनुप्रयोग अभी नहीं किया गया है। भारतीय शिक्षा के बिंदुन आयोगों एवं एवं नियुक्त विशिष्ट समितियों द्वारा रूप से इस और इंगित कर तत्कालिनतित सुझाव भी दिये गये परन्तु इस और ध्यान नहीं दिया गया। इसके स्थान पर धर्मनिरपेक्षता के निष्पादनक पक्ष को ग्रहण कर धर्म-विहीन सामान्य शिक्षा को व्यवस्थित किया गया। ऐसी धर्मनिरपेक्षता के दुष्परिणाम, आज...
जीवन के हर क्षेत्र में विष बेल की तरह पैलते जा रहे हैं। विश्व के इतिहास में विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों, प्रजातियों, राष्ट्रों के मध्य जो भी रक्षापाल हुये, जेहाद और धर्म—युद्ध नहीं हुये, उसके पीछे लोगों का अपने अन्य के धर्म के बारे में और उसमें छिपी समानता और एकता के बारे में अज्ञातता ही प्रधान कारण रही है और धर्म की तरह भविष्य में जो भी अमानवीयतावशे और विनाश होगे उनके पीछे यह अज्ञातता ही एकमेव कारण होगी।

यूनेस्को की प्रस्तावना में कहा गया है, “चूँकि युद्धों का जन्म नाना विश्व में होता है अतः नाना मस्तिष्क में ही शान्ति की किलेबन्दी करनी होगी।” अतः समस्त मानवों में परस्पर सद्भाव व बन्धन उत्पन्न करने के लिए एक आधारभूत, सर्वमान्य विश्वास उत्पन्न करना बड़ा जरूरी है। विश्व के प्रत्येक धर्म ग्रंथ, पृथक रूप से या समबंध होकर, इस आधारभूत विश्वास और एकता को उपजाने के शास्त्र बीज हैं। सभी धर्मों के वाह्याचारों में जो अंतर दिखते हैं वे बड़े ही स्वामाविक परम्परा गौण हैं। जबकि इनके सारस्वत सिद्धांत एक ही हैं, जो मानव को हदय और चुन्द्र के स्तर पर जोड़ते हैं।

विश्व के सभी प्रसुख धर्म ग्रंथों से सदाचार और सद्भाव के प्रकाश का सूर्य निरंतर पूरा रहा है। परन्तु आज का शासनवर्ग उससे आँख बंद कर रहा है। इसके लिए उनकी आँखों में अहमवादिता, सत्तालोलापता, राजनैतिक तिकड़म और उपयोग राष्ट्रवाद की पट्टी बनी हुई है, मानवतावाद का चित्त उन्होंने उतारा फेंका है। उनके लिए सत्ता—नरोढ़ी राजनैतिक अस्तित्व की रक्षा, संघर्ष ही त्वरित मामले होते हैं; इनसे उन्हें फर्सत ही नहीं मिलती, जो वे विश्वास्रान्त, ब्रह्मचर्य और मानवता के कल्याण के लिए कुछ रचनात्मक कदम उठा सकें। देश में शिक्षा को धर्म विहीन बना कर बिजन यो प्रश्न देने से शिक्षा और विपत्ति के बीच मध्य घुटनों में, अब विपत्ति शिक्षा की पकड़ से बाहर होती जा रही है, अतः यह नहीं कहा जा सकता था कि धर्म विहीन शिक्षा से विपत्तियों में कोई कमी आई है। धर्म विहीन विज्ञान द्वारा इतने अवाध कदम बढ़ चुके हैं कि, किसी भी क्षण, मानव अपने ही हाथों सम्पूर्ण मानवता का विनाश कर
सकता है।

यह सोचना कि धर्म मानवों में अलगाव और पृथकता पैदा करता है, लोगों को विभिन्न वर्गों में बॉटकर उन्हें परस्पर लड़ता है और धर्म की शानि मंग करता है, 
आदि विचार वस्तुतः सीमित अवधयन जनित अज्ञान के परिवारक हैं। मनुष्यों को 
परस्पर बाँधने वाली, धारण करने वाली और प्रेममाय पैदा करने वाली वस्तु वास्तव में 
धर्म ही है। जो चीज मानव के लिए कल्याणकारी न होकर मानव जाति का अहित 
चाहती हो, उसे धर्म मजस्त्र और रेलिजन की संज्ञाये देना यथार्थता से परे जाना है,
उसे तो सदैव अधर्म ही कहा जायेगा।

धर्म उस धारणा और जीवन—मार्ग को कहेंगे, जो सत्य और कल्याणकारी हो, जो 
समस्त मानवों के लिए हो। ज्ञान, भक्ति और कर्म के जिस दर्पण में मानव प्रकृति 
आलोचित हो सके वही धर्म है। धर्म—मजस्त्र—रेलिजन वही है जो हमें मानव प्रकृति का 
बोध कराये। अति: धर्म का स्वरूप अनिवार्यतः अस्वंत व्यापक होगा, धर्म संकुचित 
दृष्टिकोण को सहन नहीं कर सकता। लेकिन यह कितनी विशिष्ट बात है कि आज 
संकीर्णता और संकुचित दृष्टि का ही नाम धर्म रख लिया गया है। यह बहुत बड़ा 
अन्याय है। जितना शीघ्र हो इस अन्याय का निवारण होना चाहिए। शास्त्री—धर्म एक 
ही है, उसे किसी देश प्रजाति, राष्ट्र की सीमाओं में बाँधना अनुचित है। धर्म का क्षेत्र 
उतना ही विस्तृत है जितना स्वयं विस्तृत मानव—क्षेत्र हो सकता है। धर्म न तो वाद है 
न पक्षात्मक और न ही अहमवादिता की वस्तु। यह प्र.स्म्स से अंत तक निरपेक्ष है।
धर्म और नीति भी इकट्ठे हैं और एक दूसरे पर अपलभ्य। नेतिक्ता को धर्म से 
पृथक करने कोई भी सुपरिणाम प्राप्त नहीं किये जा सकें हैं। ऐसे धर्मों की उन 
सार्वभूत समानताओं और एकता तथा महत्वहीन भेदों के साथ उन सुझावों को प्रस्तुत 
करने की इच्छा का संवरण में नहीं कर पा रहा हूँ जिनका परिचय शिक्षकों को करवाया 
जाना तो आवश्यक है ही परस्तु साथ है सामान्यतिकता के रंग में आकर दूसरे नेताओं,
नागरिकों, पादरियों, पुरोहितों, मौलिकों और वैज्ञानिकों के लिए भी इसका परिचय
उतना ही आवश्यक है। इस हेतु सर्वप्रथम विज्ञान और धर्मों के समन्वय पर आधारित नैतिक शिक्षा की सम्भावनाओं एवम् तत्सम्बन्धित सुझावों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

धर्म और विज्ञान की एकता

सामान्य रूप से यूरोप की विचारधारा विज्ञान प्रधान है तो एशिया की विचारधारा धर्म-प्रधान मानी जाती है। सभी वर्तमान प्रमुख धर्मों का उद्भव एशिया में ही हुआ है। फिर भी एशिया की इस दार्शनिक विचारधारा का मेल, यूरोप के आधुनिक विज्ञान से मिलता है, अन्तर मात्र इतना है कि एशिया के दार्शनिक-गण, मन को मिलित-स्वरूप मानकर अपने अनुसंधान में अग्रसर हुए थे। उन्होंने इस ब्रह्मांड के मानसिक भाग का विश्लेषण कर, इसके द्वारा अनेक सिद्धांतों को प्राप्त किया था जबकि आधुनिक यूरोपीय विज्ञान उसके मौलिक भाग का विश्लेषण करके ठीक उन्हीं सिद्धांतों में उपनीत हुआ। अपनी टुनिया और समृद्ध सुधिक की व्याख्या और समझ सबसे पहले धर्मों ने दी, विज्ञान ने नहीं। यह भी कहा जा सकता है कि धर्म पहला विज्ञान है। बाद में विज्ञानों ने जब दूसरी व्याख्याओं की, दूसरे कार्यकारण बताये तो, इसे अभिन्न कर दिया। यूरोप में धर्म की उच्चता के नाम पर, वैज्ञानिकों को ज्ञान देने के लिये सजा भी दी गई। दूनों, गैलेक्सियों और सुकरात इसके उदाहरण हैं। परस्तु धर्म और विज्ञान का बैल संघर्ष नहीं है, जैसा लोग समझते हैं। धर्म से यहीं तात्पर्य, धर्मों के यथार्थ सिद्धांतों से है। कर्मकाण्डों, अभ्य-विश्वासों, भावायाद, सामान्यदातिक विश्वेष, सड़क-गली परम्परायें, तकर्कीलितां आदि जो धर्मों के नाम पर, स्वार्थवश, आह्मकारवश, अज्ञानवश चलायी जाती हैं, को विज्ञान अस्वीकार करता है परस्तु धर्म के मूल तत्त्वों से विज्ञान का कोई विरोध नहीं हो सकता। हिन्दू, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, ताओवादी आदि सभी धर्मों के इन मूल तत्त्वों पर आधारित नियमों का परिपालन करते हैं। इन धर्मों में जब जब उपर्युक्त विकृतियाँ आ गयीं तो समय पर, सुधारवादी आन्दोलन हुये और धर्म, मजहब या रेल्यॉन ने, युगानुपूर्व अपना निकाया हुआ परिवर्तित स्वरूप ग्रहण किया। परस्तु ये परिवर्तन बड़े हुए वाह्याचारों और कर्मकाण्डों के प्रति, सुधारतमक दृष्टिकोण

[122]
परन्तु धर्मनिरपेक्षता का युग आने पर, विद्यालयों से धर्म को बहिष्कृत सा कर
dिया गया। धर्मों के यथार्थ ज्ञान के बारे में अज्ञात बढ़ने से पादरी, पुरोहित, पंडितों
के स्वाध्याय आगे हो गए, इन्होंने स्वाध्याय साधृतिरत बातों को छिपा कर सारीही बातों को तूल
dिया। इन सारीही बातों से धर्म दृष्टि हुआ, साम्प्रदायिकता को प्रभाव प्राप्त रहा।
इससे पादरियों, पुरोहितों और मौलिकों के स्वाध्याय पूर्ण आदेशों के साध-साध, यथार्थ
धर्मदिशाओं को भी जोड़ा गया और उन्हें ही विद्यालयों से हटा दिया। यथार्थ धर्मदिशाओं
के स्थान पर राजनीतिज्ञों व वैज्ञानिको के आदेश चलने लगे। परन्तु मर्ज बढ़ता ही गया
ज्ञों ज्ञों दवा की और अब स्थिति बदतर हो गयी है।

निष्कृत धर्मनिरपेक्ष शिक्षा के कारण अपने व दूसरो के धर्मों के बारे में बड़ा
सामान्य अज्ञात, धार्मिक कदृढ़ता बढ़ा रहा है और सूक्ष्म के भी धार्मिक बना हो गये है।
जबकि अतीत में सभी धर्म सुधारवादी नीति अपनाते रहे और सत्य को अपने में
प्रतिष्ठित करते रहे। यथा, लाओत्जिन एक गम्मीर धर्म-दर्शन है। इसकी साधृतिरत
शिक्षा में यही है जो वेदांत, योग, तत्वज्ञात आदि में हैं। इन सभी धर्मों में व्यक्ति की
अन्तर्निहित अच्छाइया पर जोर दिया गया है और सभी में एक ही प्रधान साधन यह है
कि, मानव जाति किसी नत्यसंगीन मानव में सदैव बनी रहती है जो अल्पनिक्रिय है।
यह भौतिक शारीरिक जिस किसी गतिशील मानव के अभी है, विभिन्न धर्मों में उसे आत्मा,
प्राण, रूह, सिपोरेट, विताताकित आदि कहा गया है। इस जीवन के वर्तमान भी अर्थक
जीवन रहता है, जिसे पारलोकिक जीवन कहा गया है। किन्ही धर्मों के अनुसारहों में
यह पारलोकिकता इतनी अधिक बढ़ गयी जैसे कोई बीमारी या उन्माद हो। ठीक
इसके विपरीत परिवर्तीत विवचारधारा, विज्ञान, इहलोकिक या भौतिक वस्त्रुओ के मोह में
उलझ गई और इहलोकितकता ने वहाँ ऐसी मानसिक बीमारी का रूप ले लिया, जिसके दुःखरिशिये से दो विश्वविद्यालयों में भीषण नरसंहार हुये और इनसे भी निरंतर युद्ध की समायना मानवता को सुख की सांस नहीं देने दे रही है।

व्या एशिया के विचारों में कोई ठोस एकता हो सकती है 'रह सोचने में हमारा ध्यान यहाँ उपजे धार्मिक विचारों की ओर जाता है।' इसी तरह यूरोपीय विचारों की मूलभूत एकता की बात सोचते समय हमारा ध्यान, बरबस ये धैर्य आकृति करते हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में लगा दिया। ऊपरी तौर से यही प्रतीत होता है कि परिचय के धैर्यात्मक विचारों की एकता निर्विवाद है, विज्ञान सिद्धांत और व्यवहार का अभिवर्त योग है, पूर्व धार्मिक विचारों का एकता कोतिपत कहानियों पर आधारित है, धर्मों का जन्म ही अन्य धर्मविलयों को पीड़ित करने या उन्हें मार देने की लिए हुआ है, आदि आदि।

परन्तु विज्ञान के क्षेत्र का एक अन्य पहलू यह भी है कि विज्ञान के नित नवे सिद्धांत पुराने सिद्धांतों को अभाव कर देते हैं। चिकित्सा क्षेत्र के चिकित्सकों, डॉक्टरों, वैद्यों हकीमों और होम्योपैथिस्ट में मतभेद हैं। चिकित्सा विधियों और दवाओं प्रतिवर्ष बदलती रहती है, आये दिन अचानक, लम्बे समय से प्रचलित कोई दवा हानिकारक घोषित कर दी जाती है। यहाँ तक कि गंगों के स्वतंत्र निधन भूत विद्वानों का असंतत्त नये सिद्धांतों के आक्रमण से खतरे में हैं। समाज-विज्ञान के क्षेत्र में तरह-तरह के वाद परस्पर विरोधी हैं।

संसार में व्याप्त दुःखरिशियों के लिये धर्म व विज्ञान दोनों नहीं : व्यस्तत विज्ञान के अपने विधि-विधान, नीति, सिद्धांतों और औपचारिकताओं हैं, रहस्यमय प्राकृतिक परिस्थितियों हैं, पदित्र पावन, पुनर्नवीन पुजागृहों की भौति प्रयोग व कार्य-कस्त हैं। पोप-पन्द्रों के विचारों जैसे अभिन्नता कहे जाने वाले विचार हैं। देववाणी तुल्य भविष्य वाणिज्य वाणिज्य और अपने को विशेषत नन्दनाने की कला है। धर्म की ही भौति इसमें हठवचिता
तथा अन्य देशों पर प्रभुत्व जताने वाली देश भवित है। वैज्ञानिकों और उनके देशों के बीच भी परस्पर विवेद रखते हैं। एक और धर्म ने वैज्ञानिकता और तार्किकता का साधन त्याग दिया तो दूसरी और विज्ञान ने ईश्वर, धर्म और नैतिकता का त्याग कर दिया। परन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि ये सारी बातें न तो यथार्थ-धर्म के दुष्परिणाम है और ना ही यथार्थ विज्ञान के वरन्त यह सारे दुष्परिणाम मानव प्रकृति में निहित उन बुराइयों व शैतानियत के हैं जो छलपूर्वक मानव को स्वार्थ और अहंकार का पुतला बनाकर, उससे धर्म और विज्ञान का दुरुपयोग करवा रही हैं।

धर्म और विज्ञान में एकता अन्तर्निहित है: आकांक्षानुरूप विचार जन्म लेते हैं। जो लोग अपने समावेश एकता के आकांक्षी हैं, एकता का दर्शन करने जो विरोध के, उन्हें विरोधी-नायक ही दिखाने और जो लोग निष्पक्ष नायक से किसी भी विषय में दोनों पक्षों का मूल्यांकन करेंगे, वे ही दोनों को न्यायपूर्वक देख सकेंगे। सत्य को वे ही जान सकेंगे जो किन्ही विरोधी अतिवादों के मद्य स्थिर रह सकें। कहने का आशय यह है कि, धार्मिक विचारों की भौति ही वैज्ञानिक विचारों में भी वाह्य रूपसे दिखने वाले विवेदों में सार्वभौत एकता का सत्य निहित है। दोनों में यह एकता दर्शन द्वारा प्रतिस्थापित की गयी है। दर्शन की म्यास्टिक के कारण ही आज सुसंस्कृत और विचारवान धर्मवेदानों और वैज्ञानिकों द्वारा एकता के इस यथार्थ को अन्य मान किया जा रहा है। कोई भी दो विस्मय और दोहरी आवाजें अपने अयोग्य: समान नहीं होती, यहाँ तक कि कोई भी दो नसमतिक समान नहीं होते। फिर भी सामान्य रूप से मानवीय चेहरों, शरीरों, आदतों, विचारों, पेश की पत्तियों में तमाम तरह की समानतायें हैं, मानव ऐसे ही कारण यह सम्भव बनाते हैं कि मानव जाति एक दूसरे को समझे, सद्भाव रखे और एक सम्भव समाज का निर्माण कर जीवन यापन करें। प्रकृति में दिखने वाला एकता का यह सिद्धांत ही सदाचार, सद्भावना और सम्भव समाज के अस्तित्व का श्रोत है। सभी धर्मों की सार्वभौम बातें में ऐसी एकता को पहिचानने का तात्पर्य है नैतिकता, मानवता और सम्भव के निर्माण में एक बहुत बड़ा योगदान।
यह एकता, संसार में शान्ति स्थापित करने का मार्ग है: एकता के इस सत्य को पहचान जाने वाले लोगों का प्रेम, पूर्व और पश्चिम के लोगों के प्रति समान होगा। ऐसे लोगों का सदैव यही प्रयत्न होगा कि वे एकता की इस शक्ति को बढ़ावें, गौरवान्वित करें और साथ ही विविधता के सिद्धांत को एकता के सिद्धांत के अधीन करें। एकता की इस शक्ति का प्रभाव यूरोप में देखा जा सकता है, जहाँ की संस्कृति और विज्ञान का एक सामान्य स्वरूप है। इसी तरह एशिया में यह एकता कुछ धार्मिक तीर्थस्थानों में देखी जा सकती है, जहाँ विभिन्न धर्मों के तीर्थयात्री विशाल संख्या में आकर एकत्रित होते हैं। एकता के इस सत्य को जानने वाले, मानवता के प्रेमी, प्राण-पशु से यही प्रयत्न करते हैं कि इस धरती से परस्पर, विरोध, कलह, फूट की बातों को यथाशक्य कम किया जा सके। यूरोप में विरोध, कलह और फूट की शक्तियों ने ही दो विश्वयुद्ध रचकर अनगिनत नर-संहार किये और तरह-तरह के राजनीतिक, प्रजाति, राष्ट्रीय और रंगमेद वाले विविधताओं और धूम्रपानों को जन्म दिया। इसी तरह एशिया की ओर देखने पर, भारत में जातीय-उँच-नीच के मेंधाब द्वारा तरह के तरह के शोषण और अत्याचार किये गये, कर्मानुसार निर्धारित होने वाली जाति औरउससे जुड़े व्यापक मंदिर संस्थान को स्वार्थवश समाप्त कर, जाति निर्धारण वसानुगत होने लगा। धीरे और जापान में शोषक और शोषितों के मध्य सशस्त्र गुहयुद्ध (1931-45) हुये। चाहें जैसे, जब कभी ऐसे विरोध, कलह, शोषण, और विविधताओं का जन्म होता है, दोनों पक्षों को आध्यात्मिक और नीतिक रूप से हानि ही पहुँचती है। अतः सभी देशों और उनके नागरिकों की बीच वांछित शांति, संदेह और एकता को बढ़ावा देने के लिए एवम् धर्मनिरपेक्ष की सकारात्मक विचारधारा को हृदयगम्य राने का व्यावहारिक रूप देने के लिए यह जरूरी है कि पहले धर्म और विज्ञान तथा धर्म और धर्म के मध्य विचारात्मक एकता को प्रमाणित किया जाय और सबको इसकी प्रतीत कराई जाये। तत्पश्चात विश्व में धर्म और विज्ञान के समन्वय पर आधारित सामाजिक-संगठन और व्यविधता जीवन यापन से समक्षित एक योजना को प्रतिस्थापित किया जाये। धर्म और विज्ञान
के समन्वय पर आधारित इस योजना में काल-देश के, सभी प्रकृति, व्यवसायों के
लोगों और उनकी जीवन की आवश्यकताओं को सुरक्षित किया जा सकता है। मानवता
के साथ, अनिवार्य: जो शारीरिक और आध्यात्मिक भूख जुड़ी है उसकी तृप्ति का भी
यही समाधान है।

कुछ लोगों ने धार्मिक झगड़ों की आशंका से ऊब कर उतार-बना में, धर्म का
प्रबेस सभी क्षेत्रों में बन्द कर दिया है ताकि धार्मिक और सामाजिक झगड़े बन्द हो
सकें। यदि भारत में तथाकथित "धर्म के अतिक्रमण" पर लगे निषेधों के परिणाम देखे
जाये तो, देश में सामाजिक दंगे रोज बढ़ते ही जा रहे हैं क्योंकि धर्म पर लगाये
निषेधों के यह निर्णय कुछ वैसे ही निर्णय हैं कि रोग को ठीक करने के लिये रोग
सहित रोगी को ही मार दिया जाये। धर्म को भली-भाँति उखाड़ फेंकने के लिए, सभी
क्षेत्रों में इसके तथाकथित अतिक्रमण को रोकने के लिए, यह जरूरी है कि पहले,
जीवन के दुखों और मृत्यु-मय को नष्ट कर दिया जाये। जब तक मानव को दुख,
मृत्यु और प्राकृतिक आपदाओं का भय बना रहेगा, जब तक उसे धर्म द्वारा प्राप्त होने
वाले धीरज, सान्त्वना और अभ्यास की जरूरत पड़ेगी ही। जिस तरह यह प्रचारित
किया जाता है कि, धर्मों में परस्पर बड़े मतभेद और वैभवशाली हैं जो मार-काट को जन्म
देते हैं। उसी तरह यदि इस यथार्थता की पहचान कराई जाये कि सभी धर्म सामान्य
रूप में एक ही हैं, कोई भी धर्म न तो सिक्ष हिन्दू का है, इन वनस्पतियों का, न ईसाई
का और ना ही बौद्ध का, वरन सबका एक ही धर्म है, तो निश्चय ही सब एक-दिल,
एक जो होकर मानवता, प्रेम और विश्वव्यूह को स्थापित कर सकेंगे और कदाचित
धर्म का यह सबसे महान, सुधार-आदेशल होगा और, एक सम्राट जीवन से चले आ रहे
संघर्षों के स्थान पर ऐसी एकता स्थापित करने पर एक नये और फल्यात्मक युग का
अभियुक्त होगा, जिसका सु-संचालन, वैज्ञानिक-धर्म और धार्मिक विज्ञान द्वारा होगा।

इस दिशा में समाध-समय पर कुछ बड़े ही आशावान संकेत प्राप्त हो रहे हैं,
जिनसे विज्ञान-विज्ञान, धर्म-विज्ञान एवं धर्म-धर्म के मिश्र के तमाम विनोद, बायज्जूद
तमाम कृतिम बाधाओं के दूर हो रहे हैं। यथा, सन् 1983 में भारतवासी अमेरिकन
राष्ट्रीयता के वैज्ञानिक बन्दोबस्तर ने अपनी गणित से, गीता के सिद्धांत, "न अभावं
विधाते सतः" अर्थात् "जिस वस्तु का अस्तित्व है उसका सम्पूर्ण विनाश नहीं हो
सकता," को प्रमाणित कर दिया। इस सिद्धांत की पुस्तिका विज्ञान दर्शन की अत्यंतराष्ट्रीय
gोष्ट ने भी की है। यह वैज्ञानिक नोबेल पुरस्कार से भी सम्मानित है सोचने रूस
और यूरोप महाद्वीप में विज्ञान शाब्दिक प्रयोग और विस्तृत अर्थों में किया जाने लगा
है, जिसमे अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान तथा उससे सम्बन्धित विषय भी आ गये हैं।
फिर, धर्म और विज्ञान दोनों मानव को सत्य की ओर अग्रसर करते हैं। विज्ञान
मताप्रस्ताता, अंधविश्वास, भय और भाग्यवाद को दूर करना सम्भव बनाता है। तरक और
जिज्ञासा पर बल देने के कारण विज्ञान दैविक तनाव तथा धर्मसन्तता को समाप्त कर,
धर्म के यथाधिक स्वरूप को निकाहने में सहायक हो सकता है। परिशुद्ध प्रक्षण, तरक-पूर्ण
विचार और सत्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न कर विज्ञान मानव में अनुशासन लाने का
प्रयत्न कर सकता है। विज्ञान की यदि ऐसी ही प्रगति होती रहे तो भविष्य में केवल
भौतिक रूपवर्त्य और शक्ति के पीछे भाग्य गौण हो जायेगा और उच्चतर मूल्य एवम
व्यविधि की पूर्णता प्रधान हो जायेगे। अन्त में हम यह कहने में समर्थ होगे कि धर्म और
विज्ञान पृथक नहीं बल्कि एक ही वस्तु के पृथक पक्ष हैं अथवा सत्य रूपी महान शारीर
के ही दो नाम हैं जिनमे विज्ञान अथवा धर्म-संहिता (Code of life) कहा जा सकता है।

इतिहास हमें बताता है कि तमाम नये धर्मों और उनकी विशिष्ट सम्पत्तियाँ ने
बिश्व सभ्यता में जन्म लिया, वे फली-फूली और शान: शान: धूसिल हो गयी। दूसरे
शाब्दों में धर्म की प्रायः तीन अवस्थायें होती हैं, पहली अवस्था हो सार्वभौम तत्वो की,
दर्शन की और मूलभूत सिद्धांतों की, जो सभी धर्मों में समान रूप से होती है, जिसकी
पुस्तिका अगले पृष्ठों में की जायेगी। दूसरी अवस्था पुराणों की, अर्थात इन सिद्धांतों की
अभिव्यक्ति, इतिहास या कहानियों के रूप मे होती है, इन पुराणों के नायक महान
नैतिक पृष्ठ होते हैं, उनकी शक्ति का आधार उनकी नैतिकता और पवित्रता होती है।

[128]
धर्म की तीसरी अवस्था, कमरकांड वाह्यावलोकन ओर धर्मान्वयन की होती है, जब धर्म के मूलभूत सिद्धांत विलीन हो जाते हैं ओर विभिन्न धर्मावलम्बी मूल्यविविधता हो, बच्चो की तरह अपने अपने प्रतीकों के साथ विस्मय तरह से आयतन देखते हैं। धर्म की इतने विभिन्न अवस्थाओं में हम कारण-परिस्थित न कि नियम भले ही लागू करें। परन्तु इतिहास यह भी बताता है कि दर्शन-दर्शन पर नये पैगम्बरों, अवतारों, महादेवों, महान पुरुषों ने उन्हीं पुराना धर्म-सिद्धांतों की व्याख्या नये ढंग से, लोगों की प्रकृति, भाषा, मौखिक ओर भौतिक परिवेश के अनुरूप की। उन्होंने नवजीवन प्रदान किया ओर मानव में धर्म के प्रति पुनः अनुराग, उत्साह व धार्मिकता उत्पन्न कर, उनमें गोदधावाद, (God-filledness,) तप, जज्ञा या आत्म-प्रख्यात की मायावत से भर दी। यह नये धर्म (नये उद्वर्त)एक ही सार्वभौम, स्थानीक, ओर सर्वभौमी धर्म की ही धोषणा नये शास्त्रों में किये जाने के कारण स्पष्टत:दायक हुये।

वर्तमान समय की आवश्यकता के अनुरूप, इस घोषणा को वैज्ञानिक-धर्म का स्वरूप देने की आवश्यकता है। जिसे समाजवादी ओर जनतात्मक आधारों पर स्थापित किया जाये, व्यक्तिवादी आधार पर नहीं। इसमें प्रख्यात धार्मिक ओर वैज्ञानिक दोनों प्रकार के लोगों के विचारों को प्रभावित देने की आवश्यकता है। यद्यपि विज्ञान ओर धर्म को एक ही वस्तु के दो पृथक पक्ष मानकर, बीते दिनों में ओर आज भी बहुत सी समितियां बनाई गयी। परन्तु दुर्गमद्विवास सभी धर्मों के अनुयायी, धर्मों के यथार्थ ज्ञान के अभाग में प्राप्त: वैज्ञानिकता के मार्ग से परे हो गये। वैज्ञानिकों की चालाकी नेताओं की सत्तालोलपता ओर पादरी, पुरोहित के अंधविश्वासों ओर बीच विवेक की आवाज दबकर रह गयी। यह मानव की स्वभाविक कमजोरी है कि बार-बार धर्मों के तात्त्विक सिद्धांतों से परे हटकर व्यक्तिवाद ओर प्रतीकों के फर में पढ़ गया। दूसरे शास्त्रों में यह व्याधवाद सिद्धांतों ओर वैज्ञानिकता से विलग होकर प्रतीकों, मतवादों, अंधविश्वासों ओर स्वचाला में उलझ गया। मानववादी बनने के स्थान पर सम्प्रदायवादी बन गया ओर पोप, पंडित, मुल्लाओं, गंडो-तात्विकों जागू ओर ट्रिक को, धर्म समझ बैठा। धर्मान्वयन से

[129]
अंधा होकर नरसंहारों पर उताल हो गया। वैज्ञानिक-धर्म के प्रकाश द्वारा दिखने वाली सर्व-व्यापी एकता के विचार और व्यवहार के मार्ग को नहीं अपनाया गया। वैज्ञानिक और धर्मबेत्ता सत्यानुसंधान के लिए सहयोग पूर्वक एक साथ न चल सकें और आज वे परस्पर असहमत रहने के लिए सहमत हैं।

अस्तु इन सब बातों से हताश या निराश होकर, धर्मविहीन शिक्षा अपनाने की आवश्यकता नहीं हैं। ऐसी निषेधात्मक धर्मविरोधीता, विज्ञान और धर्म के संतुलन को समाप्त कर, सत्य के केवल एक पक्ष (विज्ञान) को प्रश्रयदेती है और धर्म के प्रति नकारात्मक या उदासीन दृष्टिकोण अपनाती है। जबकि दोनों के समचय और एकता पर विचार रखने वाले वैज्ञानिकों और धर्म बेत्ताओं की संख्या में कमी नहीं है। यथा आलिवर लाज : यह ब्रूहांड उससे भी अधिक आध्यात्मिक-असत्य रखता है जितना कि हम सोचते हैं।" जेम्स जीन्स: (गणितज्ञ और खगोल शास्त्री) "ब्रूहांड बजाय किसी बड़ी मशीन के, एक विचार की मौति अधिक प्रत्यक्ष ने रहा है।....... प्रकृति में हम जो भी नियम और व्यवस्था देखते हैं उसे आदर्शवाद की भाषा में ही भाली मौति समझाया जा सकता है।.... विज्ञान जितना आगे बढ़ पाया है, वहाँ तक, जिसके बारे में प्रबल संनादवादी तो कि अमूर्त वस्तु मन से सम्बन्धित नहीं है विलीन हो गयी और कोई भी ऐसी बात प्रत्यक्ष न हुई जो मन से सम्बन्धित न हो।" प्रो. ए. एडिंग्टन: "आधुनिक मौतिक शास्त्र ने द्रव्य पदार्थ की अवधारणा को हटा दिया है....... हमारे अनुभवानुसार मलिक ही प्राथमिक और प्रमुख पथ-प्रदर्शक है... चैतन्य को में सार्वभौम मानता हूँ।" 1 हर्बर्ट स्पेररस: "उस ने जानने योग्य के बारे में कोई विवाद नहीं है वरन वस्तुतः यह धर्म का समर्थन करता है। सभी धर्मों के उपदेशकों व संस्थापकों ने तथा विशेषण प्राचीन व आधुनिक, पश्चिमी व पूर्वी दार्शनिकों ने इसी बात की शिक्षा दी

1. प. ऐ. एडिंग्टन, दि नेचर ऑफ़ फिजिकल वर्ल्ड, पृ. 276
है कि यह अज्ञात और न जान पाने योग्य और कुछ नहीं दरन हमारी आत्मा (स्वतः,रूह) ही है।" 1 अल्फ्रेड रसेल (डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के सहअंगाशक): "आत्म तत्त्व द्वारा पदार्थ नियंत्रित होता है और वास्तव में, जो भी बड़े बड़े अंतर्विषय हुये हैं, वे आत्मा के अन्तः प्रवाह (अवैद्य, पैगम्बर आदि के रूप में) द्वारा सम्भव हुये हैं"।2 एफ. मैन्सन की दि ग्रेट डिजाइन नामक पुस्तक में 14 पंजीयात वैज्ञानिकों का समवेत कथन है, "संसार सबी मशीन आत्मा विश्वन नहीं है।" 3 के. एफ. माथेर (सू. पू. भूगर्भवातीत, हार्वर्ड विश्वविद्यालय): "पदार्थ और ऊर्जा की व्याख्या करते समय यही संकेत प्राप्त होते है कि विश्वस्त ही सर्वोपरि वास्तविकता है।" टेलरड दि कार्डिन (पादरी वैज्ञानिक): उसने दोनों (विज्ञान व धर्म) को हमारे विचारों की व्यवस्था में सुसज्जित और एकत्र पक दिया है। उस ज्ञान शक्ति के प्रकाश में, अधिक दिनों तक यह सिद्धांत स्वीकार करना सम्भव नहीं है कि धर्म और विज्ञान, जीवन के दो पृथक क्षेत्रों से वास्तव रखते हैं। वस्तुतः ये दोनों सम्पूर्ण मानव आत्मिक के अनुसरण हैं। 6 गार्मिक आदमी अधिक दिनों तक इस लोगी संसार से मुंह नहीं मोड़ सकते और न ही मौतकादी पुरुष अधिक दिनों तक आध्यात्मिक विचारों और गार्मिक भावनाओं के महत्व को छुपा सकता है। एल्बर्ट आइन्स्टीन: "मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं जो दुर्बाल में सामंजस्य बनाकर अपने को व्यक्त करता है मैं विश्वास करता हूं कि बुद्धिमत्ता पूरे विश्व में है और सभी वैज्ञानिक कार्यों का आधार दृढ़ विश्वास है कि विश्व एक सुव्यवस्थित एवं जानने योग्य स्थान है न कि संयोग की वस्तु।" 4

1. हर्बर्ट स्पेन्सर, फर्ट प्रिंसपल्स, (अथिन परिवर्तित संस्करण), पृ. 190
2. अल्फ्रेड रसेल वैलेस, सोशल एनोवरमेंट एण्ड में रल प्राइग्रेस, पृ. 25
3. एफ. मैन्सन, दि ग्रेट डिजाइन, 1936, पृ. 24
4. मिर, अप्रैल, 1983, बाम्बे, पृ. 33

[131]
এ ছোট বিশ্বের জন্য আমরা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি যা সাধারণত যাতায়াতের ব্যবস্থা করছি।
वैसे ही उसमें अपूर्वकता की भावना का प्रादुर्भाव होगा, वह दूसरों के लिये सहज ही त्याग करने को तत्पर होगा और उसमें नैतिकता का स्वपन दी दास होता बला जायेगा। एकता के इस महान सत्य को विज्ञान व धर्म समबेट प्रकाशित करते हैं। यही कारण है कि, धर्म-विज्ञान और वैज्ञानिकता-विज्ञान धर्म, एवं धर्म-विज्ञान नैतिक शिक्षा अथवा नैतिकता-विज्ञान धर्म शिक्षा निष्काल हो रही हैं।

आधुनिक युग में विज्ञान व धर्म के बीच जो खाई बनती जा रही हैं, वह अहमवादिता से प्रेरित हैं और मानव कल्याण में बाधक। यह कहना कि, देश की वैज्ञानिक उन्नति के लिये, धर्म पर प्रतिबन्ध लगाने जरूरी हैं, एक प्रकार का वैज्ञानिक-अंध-विश्वास है। धार्मिक झगड़ों अंध विश्वासों, स्वार्थों, शोषण और धार्मिक-मनमानी रोकने के लिये, चालक को गिरफ्तार करना चाहिये, वाहन को नहीं।

मानव वैज्ञानिक साधनों से, मानव ने सम्पूर्ण विश्व को एक बना डाला है। उसने रेडियों, टी.वी., बेटार के लार, दूरदर्शन यातायात व परिवहन के साधनों से प्राकृतिक सीमाओं तो समाप्त कर दी। परन्तु विभिन्न धर्मों के बीच उठाई गई दीवारों के कारण प्रायः राजनैतिक सीमाओं विद्रोह कर रहे हैं। दिलों-दिमागों से जब राष्ट्र या देश के अवरोधकों का त्याग होगा, तभी उस नई सम्पत्ति का उदय होगा, जिसकी कल्पना कवि  व समाजवादियों करते हैं। जिसका आदर्श मनु ने रखकर, उसका आचरण किया। ऐसी नई सम्पत्ति में ही यू.एन.ओ. जैसे संगठन प्रभावी ढंग से कार्य कर सकेंगे। व्यक्ति: यू.एन.ओ. जैसे संगठन के साथ आज “सर्व धर्म लोग” जैसे संगठन को संयुक्त करने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा पहले, मानवता को हराया और बुद्धि के स्तर पर जोड़ा जा सके।

शिक्षाविदों-शिक्षकों का दायित्व:— शिक्षा संस्थाओं को चाहिए कि वे इस “विज्ञानमय-धर्म” और इसके परिणाम स्वरूप उत्पन्न होने वाले, मानव इतिहास के एक नये युग के सूत्रपात का उदघोष करें और इसकी जानकारी दें। भारत में, संविधान निर्माण के दौरान (3 अप्रैल, 1948) अनेक संस्थाओं ने, दूरदर्शन धर्म, मानव धर्म तथा सब धर्मों के सामूहिक सिद्धांतों के अध्ययन पर बल दिया था। एच. वी. कामक का वक्तव्य था, “हम लोगों को
ऐसे धर्म की उन्नति करनी चाहिए जो मानवता का धर्म हो, जो सार्वभौम-धर्म हो, जो महान कवियों, सन्तों, ज्ञानियों और महात्माओं का धर्म हो। हमें ऐसे धर्म की उन्नति करनी होगी जो न मुसलमान मात्र का हो, न हिन्दू का, न क्रिस्तियन का और न ही ज्यू लोगों का, वरन वह मानव धर्म होगा। हमें ऐसे धर्म की उन्नति कर इसके आधार पर शांति, एकता और बलुबा फैलने का प्रयत्न करना चाहिए। हम लोगों को, "अह्मानिक एकता द्वारा सिंचित प्रजातंत्र" जैसे विश्व दिवस को अपने नवोदित प्रजातंत्र में स्थापित करने के लिये मार्ग-दर्शक बनना चाहिए।"

शिल्पा, इतिहास से लिये गये "सबक" को भी प्रचारित करने की आवश्यकता है। यथा, अह्मानि और धर्मविविधता विज्ञान, विगत महायुद्धों में कितना अभावशील था उठा। महायुद्धों के बाद तनाम सेनानायकों व राजनायकों ने स्वीकार किया कि युद्ध की गाथयों अध्यात्म लक्जाजनक, हेतु और अधम होती हैं। उन सेना-नायकों के विचारों की बड़ी आलोचना हुई जिन्होंने युद्ध को अल्पमूलग सिद्धांत के सुलझाव का मार्ग माना। उनके विचार में, यदि एक राष्ट्र की सीमा वसीय का अभाव या कम स्थापित है तो अन्य राष्ट्रों को भी किसी न किसी राष्ट्र तक अभाव या कम स्थापित करना पड़ता है। राष्ट्रवाद उठाता है परसू एक सीमा के भीतर। जब यह राष्ट्रबाद, स्वायत्तता व स्वस्थ्य के उपयोगों से परे मानवतावाद की सीमाएं लांग कर उग्र और अहमवादी हो उठता है तो यह मानवता को धर्मविविधता की अधिकतम नरसंहारों के लिये उकसाता है। उन्हें धर्मग्रंथों की तत्त्ववृत्ति वेदांतविद्या से भी परिचित करना आवश्यक है, यथा, बहुत समय पहले गीता में कहा गया है, लोग, घृणा और वासना ये तीनों नक्स के द्वार हैं, युद्ध से अधिक बुरा और कुछ नहीं हो सकता, कोरी पांडवों का युद्ध दुराई और भलाई के बीच का युद्ध था, दोनों पक्षों द्वारा अहिंसा को छोड़कर हिंसा का मार्ग अपनाने पर, दुराई के पुजारी कोरी तो मारे ही गए पांडवों ने भी जीत कर हार ही पाई। युद्ध की कथा सुनने भर को इन्हें गिने लोग बते, और उनका जीवन भी इतना किरकिरा हो गया कि उन्हें हिमालय जाकर स्वर्गरोहण करना पड़ा।

"यूनेस्को" की प्रस्तावना में कहा गया है कि, "सरकारों के एकमात्र आधिकारिक और
राजनैतिक व्यवस्था पर आधारित शास्ति, ऐसी शास्ति कदापि नहीं हो सकती, जिसे विश्व की जनता का निर्देश, सर्वसमातृ और सम्यक सहयोग प्राप्त हो सके।” इस अस्फलता से बचने के लिए, शास्ति द्वारा समुदाय लाने के लिए, युगों से मानव को अनुभवित करने वाले तत्त्व धर्म की आवश्यकता है। अतः धार्मिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक एकता के लिए समर्पित प्रयास होना चाहिए। इस दिशा में भौतिक रूप से निःशास्त्रीकरण करने के पूर्व नैतिक निःशास्त्रीकरण की प्रथम आवश्यकता है। धार्मिक अथवा अन्य प्रकार के, लेखों, दर्शनों और युद्धों का उन्मूलन उसी अनुपात में हो सकेगा जिस अनुपात में ऐसे संघर्षों की मानसिकता कम की जा सके। यह तभी सम्पन्न है जब शिक्षा द्वारा धर्मों में व्याप्त सार्वजनिक एकता को प्रकाशित कर शांति, सदनाव, त्याग की मानसिकता बढ़ा जा सके।

राजनैतिक और शास्त्रीय या उनके राजनीतिक दल, सत्ता से चिपके रहने अथवा अन्य स्थायी के कारण भय, घृणा और पूरी तरह अपने अपने निकटवर्ती लोगों को हत्या करने के लिए अक्षम हो गए हैं। प्राय: वे अप्रत्यक्ष रूप से धार्मिक, वर्गवाद की आप्रवास और अन्य दर्शनों पर प्रभावित जमाने वाली देशमुक्ति का प्रदर्शन करते हैं। शिक्षा संस्थाएँ और शिक्षा विद्यालयों को चाहिए कि यह ऐसी राजनीति की तात्त्विक विश्वास का परिप्रेक्ष्य कर दे और इससे साक्षरता रहने के लिए लोगों को शिक्षित करें, ऐसे यथा जिससे वे राजनीति, सदाचारिता का अनुरूप करें। वैज्ञानिक, पुरुषोत्तम और मानव की आध्यात्मिक शक्ति के प्रसंग का संबंध बनाकर यह अनुरूप अपने अपने आचरण का अग्रिम प्रतीत सार्वजनिक द्वारा, नायकों और नैतिक शक्तियों के स्वामियों को इस बात के लिए दिखाया जाय सके कि वे अपनी सेवा और राजनीतिक शक्तियों का उपयोग अपनी शिक्षाओं के साथ तत्त्व अथवा राजनीतिक अवधारणा की उपरोक्त हो करें। इस वैदिक परिवर्तन हेतु सभी शिक्षा संस्थाओं का यह पावन कार्य है कि वे अपनी पूर्ण कार्य के साथ अपनी अहम भूमिका अदा करें। यहीं बहु-उपयोगी साधन के रूप में ऐसी सुनिश्चित धर्म शिक्षा को अपनाने की बात आयी है जो धर्मनिरपेक्षता की संस्कृति अवधारण के दिशानिरपेक्ष न हो और जिससे मानवता का नैतिक पुनर्जीवन भी हो सके। धर्म (किसी भी धर्म के यथार्थ धर्म सिद्धान्त), नैतिकता, सकारात्मक धर्मनिरपेक्षता, मानवतावाद, मानव धर्म, अन्तर्राष्ट्रीयता, अन्तर्धर्मीता...
आदि अक्षरार्थायें, पृथक गले ही प्रतीत होती हों परन्तु यथार्थतः वे सब एक ही हैं।

मानव अपनी प्रकृति के अनुरूप अपने मस्तिष्क और बुद्धि के द्वारा इतिहास के सेनानायकों और युद्ध के विजेताओं का या तो सम्मान करता है अथवा उन्हें बीते युगों का हत्यारा या कसाई मानता है। परन्तु प्रायः हुदय से इनको कम ही सम्मान मिलता है। लेकिन ऐसे मानव कम ही होंगे जो उन व्यक्तियों का हुदय से सम्मान न करते हों, जिन्होंने अपने तप, ल्याग और आचरण के बल पर मानवता को यथार्थ शिक्षा दी, जिन्हें हम लोग महान धर्मों के संस्थापकों के रूप में जानते हैं, जिन्होंने बार-बार, "सबकी एकता" के सनातन सत्य का उद्घोष किया, जिन्होंने अपने जीवन-चरित्र द्वारा मानवों में परस्पर प्रेम के सह-अस्तित्व और सहानुभूति पूर्वक आत्मत्याग करने की सुनदरता और अस्वभावों को समावेशित किया।

ये सच्चे शिक्षक, जो अपना उच्च आध्यात्मिक दायित्व यह मानते हों कि वे इस संसार की "सर्वत्र" के प्रचारक बनें, अपना सम्पूर्ण समय लगाकर अपने शिक्षार्थियों को सदमार्ग की ओर ले जायें, जो मानवता को एक नये मार्ग से ऐसी दुनिया में ले जाना चाहते हों जहाँ शान्ति और सदभावना का सामर्थ्य हो। उनके लिए सार्वभौम धर्म की सारसृंख बारों की शिक्षा से अधिक उपयुक्त और कुछ नहीं हो सकता है, इस शिक्षा में उदाहरणों की सुविधा के साथ-साथ प्रत्यक्षीकरण के अनुप्रयोग की भी आवश्यकता है। विभिन्न देशों के शिक्षा आयोगों ने तथा विशेषकर भारतीय शिक्षा आयोगों, धार्मिक और नैतिक शिक्षा समितियों के प्रतिवेदनों द्वारा, "धर्मों के बारे में शिक्षा" पर विशेष जोर दिया गया है। अतः राज्य और शिक्षायिदों का यह संयुक्त दायित्व है कि वे सभी धर्मों के उन सायरूस समान सिद्धांतों की जानकारी, मनसा-वाचा-कर्मणा दें, जो आध्यात्म और विज्ञान सम्मत होकर अगु से ब्रह्माण्ड पर्यन्त एकता की प्रत्यक्षानुभूति करवाते हैं।

उस महान पालनकार का मोजन-कक्ष तरह तरह के सुस्वादु ध्वनियों का आगार है। जो मधुर पसन्द करते हैं, उनके लिये मधुर, जो नमकीन चाहते हैं उनके लिए नमकीन और खट्टा चटपटा पसन्द करने वालों के लिए भी तदनुरूप। अतः सबको अपनी रुचिनुसार
भोजन प्राप्त कर तृप्त हो जाना चाहिए। इसमें इस बात पर नहीं झगड़ना चाहिए कि अनुकूल को मेरी पसंद के स्वाद का भोजन करना चाहिए, क्योंकि उसकी पूरक पसंद के स्वाद से, मेरे भोजन का स्वाद न तो खराब हो सकता है और ना ही स्वाद कम हो सकता है। हमें तो अपनी रुचि के अनुकूल भोजन करने के परस्पर जल पीना चाहिए और स्वच्छ वातावरण में सांस लेनी चाहिए ताकि भोजन सुपारी होकर हमारे हृदय, मन और शरीर को पुष्ट करे। दर्शन और धर्म के क्षेत्र में भी ऐसी ही बात है। ईश्वर की यह सबसे बड़ी कृपा है कि अनेक धर्मों का सूक्ष्म हुआ है ताकि लोग अपने मनोनुकूल धर्म का चयन कर सकें। यदि एक अनुकूल सिद्ध न हो तो दूसरे का चयन कर सकें। क्योंकि अन्ततः तात्त्विक ये सभी धर्म आत्मज्ञान की ही विभिन्न विधियाँ हैं अतः सबकी भूलमूल एकता तो बनी ही रहेगी। जितनी विधियाँ बनेंगी, जितने धर्मग्रन्थ बनेंगे, जितने दृष्टा आयेंगे, दिशा का उत्तरा ही अधिक कल्याण होगा। शिक्षा का प्रमुख कार्य तो इनकी भूलमूल एकता की पहचान कराना है।

सभी धर्मों में अतिवादों से रक्षित होकर स्वर्णिम मध्यम-मार्ग अपनाने का सुझाव दिया गया है: विश्लेषण में तरह-तरह के अतिवाद फैले हुए हैं। कोई कहता है हम लोगों में अत्यधिक सांसारिकता आ गयी है तो कुछ विचारक कहते हैं कि हमारे व्यक्तिगत या सार्वजनिक जीवन में धर्म का अतिक्रमण कदापि न होना चाहिए। वहीं हम यही भी देखते हैं कि विज्ञान और तरह-तरह के कानूनों का अतिक्रमण हमारे दैनिक और पारिवारिक जीवन में जन्म से मृत्यु तक बढ़ता ही जा रहा है। धर्म के लिए कभी जो आशंकायें प्रगट की जाती थीं वैसे ही भय और आशंकायें आज विज्ञान, कला और कानून के प्रति की जा रही हैं। आज अपराधी कार्यों को रोकने के लिये तरह-तरह के कानून बनाने की आवश्यकता समझी जा रही है और इन तरह-तरह के कानूनों से मानव का जीना दुमर हो गया है। अपराधी कार्यों का पता लगाने के लिये तरह-तरह के पद और विनायक सुनिश्चित करने पड़ रहे हैं। धर्म के पह्रेदारों की अपेक्षा न्याय के पह्रेदारों (पुलिस) का व्यवहार अधिक आतंकपूर्ण और कष्टप्रद हो रहा है। स्रष्टाचार की रोकथाम के लिए जितने ही कानून
और पद बन रहे हैं, ध्वेषाचार उतना ही बढ़ रहा है। सर्वोच्च राजनैतिक पदों के लोगों की जांच के लिए भी कानून बनाने पड़ रहे हैं। इस तरह भीति-भौति के नियम कानूनों की अति हो या धर्मांनाद की, दोनों से मानव की शांति का लोप हो जाता है।

इन सब बातों का यही तात्पर्य है कि किसी भी बात की अति ज़ुरी होती है, चाहे वह कोई अच्छी ही बात हो। किसी बात की अति दुर्गृहों की श्रेणी में माना जाता है और समस्या रखते हुए मध्यम मार्ग का अनुसरण करना गुणों की श्रेणी में उपाय है। चाहे बात बात में कानून हो, चाहे विज्ञान हारा मानवता के समूल नाश की तैयारी या धर्म की अति, जो मनुष्य में विद्यमान ईंधनलय की ध्यान कर उसे खुद प्रेरित, नक्क के नए से भर देता है और मानव स्वतंत्र होने के स्थान पर पड़ो, पादरियों और मुस्लिमों का दास बन जाता है। इन जातियों के बचने के लिये भारत के सभी प्रमुख धर्मों में मध्यम मार्ग अनुसरण करने के सुझाव दिये गए हैं।

बौध धर्म : मैथिमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) के नाम से ही विश्वास है। दर्शन शास्त्र : द्वारा भी माध्यमिक की विचारधारा प्रतिपादित की गयी हैं। गीता : उन्हें इसका उपदेश दिया गया है। सांकृत की एक सुविधा है, “आश्रय, धर्म, वृत्तिया, अति सर्वांग वर्जयेत।” हर्दीस : “स्वर्णम मध्यम मार्ग का अनुसरण करो, केवल यही आश्रय अच्छे और निरापद हैं।” बाईबिल : “तत्वत पुण्यार्थो नाड नाहि, नाहि तुम पशु चतुर जीवन वाले नाहि तुम दुःखीविर्ह नाहि तुम मूर्दिनो।” गुप्त : अखारा विश्वासका मार का मोजन दो अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि में अति सम्पन धर्म का नाम तुम दिक्ताने से इत्यादि करूँ और कहूँ, “कौन जित्याहा?” या फिर में अत्यंत निर्धन हो चौंची कर अपने ईश्वर का नाम कलवित करूँ।” 

करुआन इस्लाम उससे मुहब्बत नहीं करते जो उच्चत सीमाओं का नाम कल्याण दर्शन।” जैन धर्म में भी “अतिवाद विशिष्टता” की ऐसी ही शिक्षा दी गई है।

प्राचीन भारतीय दर्शन के अतिरिक्त, प्राचीन ग्रीक दार्शनिक अरस्तू, “विल डूरेंट,”1

1. विल डूरेंट, दि स्टोरी आफ्फिलास्की, 1938, पु. 86
प्लेटो तथा अन्य ने अपने दर्शन के प्रायः सभी पक्षों में इसी मध्यम मार्ग को संगठन बताया है। प्लेटो ने इसे "Harmonious-Action" की संज्ञा दी है।

ईश्वरीय प्रकृति में हैतमाव है: सभी धर्मग्रंथ ईश्वरीय प्रकृति में यही हैतमाव बताते हैं, उपनिषद, "सर्वसम्म हृदयमय जगत (ग)" महामारत, यह संसार दो विपरीत वस्तुओं के योग से बना है...इन सब में प्रधान, सुख और दुख की जोड़ी है..............विज्ञान-पराज्य में समावेश रखकर कर्त्तव्य करने वाला बचन में नहीं पड़ता।" कुरआन : मैंने (सर्वोच्च और सर्वव्यापी आत्मा) सभी वस्तुयों को पुरुष के रूप में बनाई है।" बाईजिल, उसके, उसके, पुरुष के रूप में पैदा किया।"

हदीस, ईश्वरत्व का अस्तित्व इन जोड़ों के मध्य में निवास करता है।

इस हैत भाव के गध्य नैतिकता है: डेलफिक पूजाृह (ग्रीस) के शिलालेख में सन्देश खुदे है, "Nothing too Much" और "Know Thyself" अर्थात् यदि आप किसी बात की अति करते हैं तो आप अपने आपको नहीं जान सकते। ऐसा नैतिक संतुलन ही मध्यम मार्ग है, ईश्वरत्व की प्राप्ति का उपाय है। स्वतंत्रता और आत्मा संस्करण, नीतिशास्त्र द्वारा ब्रताये जाने वाले कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य और भौतिक शास्त्र की भाषा में केंद्राभिमुखता और केन्द्र-विमुखता आदि शब्द संतुलन रखने का ही संकेत करते हैं।

विनिमय धर्मग्रंथों में इस सर्वव्यापी हैत्व अवस्था को सर्वोत्तम रूप से विश्वास करते हुये, सभी ईश्वर को दो विशेष नामों से सम्बोधित किया गया है। यथा, अल अवल-अल आखिर, आदि और अन्य, फरस्त जीवनसंप्रदाय-मृत्युसंप्रदाय, एवर परफेक्ट-डिजाईनरलेस, अल-मुजिल-अलहदी, दंडकर्ता-श्रामकर्ता, विलविल-फ्रेंड आफ आल।

वैज्ञानिक धर्म एक महत्त्वी आवश्यकता: क्षुद्र प्रहाण्ड और गृहत प्रहाण्ड, ये दो शाब्द धर्म और विज्ञान दोनों के द्वारा मात्र हैं और हम अनुमूल्यते के द्वारा ही इन दोनों से सत्य को जानते हैं, आत्मरिक अनुमूल्यता और वाहय अनुमूल्यता। आत्मरिक अनुमूल्यता द्वारा जाने गये सत्य समूह में, मनोविज्ञान, योग, दर्शन, धर्म आदि आते हैं और वाहय अनुमूल्यते से भौतिक
विज्ञान की उत्पत्ति हुई। अतः जो सम्पूर्ण सत्य है, उसका इन दोनों जगत को अनुपूर्ति के साथ समन्वय होगा। श्रृंद व्रहाण्ड, वृहत व्रहाण्ड के सत्य-समूह की सामी प्रदान करेगा, उसी प्रकार वृहत व्रहाण्ड भी, श्रृंद व्रहाण्ड के सत्य को स्वीकारेगा।

परंतु जगत के इतिहास में अभी तक यथार्थता के विपरीत ही चला गया। जब कभी "अन्तर्वादियों" अथवा एशिया के धार्मिक विचारों की प्रधानता हुई, उन्होंने "बहिष्ठादियों" अर्थात् वैज्ञानिक विचारों को दबाया। वर्तमान काल में बहिष्ठादियों ने विज्ञान की उपन्यति के नाम पर धर्म को घोषणा, चल, कपड़ा, ट्रिक, अंध-विषयास और नृत्य-संसार संपूर्ण बताकर, राज्य और शिक्षा से इसे पृथक़ करता दिया। जबकि वास्तविकता तो यह है कि व्रहाण्ड तत्त्व और उसके आनुवंशिक विषय के सम्बन्ध में मनसत्व और विज्ञान की दृष्टि से प्राचीन-धर्मों की जो धारणा थी, आधुनिक विज्ञान की सभी आधुनिकतम अविद्याओं के साथ उनका आश्चर्यशीर्ष सामन्जस्य है जब, मानव के हृदय में किसी दार्शनिक व्यत्याह्य के कारण पीड़ा होती है तम हाँ वह अनुमोद करता है कि किसी आध्यात्मिक जीवन के आगे, सारी दुनिया को जीत लेना, सारी भौतिक सुख अर्जित कर लेना भी तुच्छ है।

लेकिन ऐसे लोग जो विज्ञान की अति से प्रेरित हैं, जो दूरदर्शी न थोरे के कारण उपयुक्त तथ्यों पर विचार नहीं करते, पर्युक्त ही समझे जागेंगे और ऐसे ही लोग धर्म के अभिलाप नहीं हैं। धर्मविद्वान शिक्षा तथा धर्म और आध्यात्मिक के आधारों से विद्वान नैतिक शिक्षा के पक्षधरों को यह जाना लेना भी महत्वपूर्ण है कि, धर्मों या धर्म का यथार्थ ज्ञान प्राप्त व्यक्ति भी कालांतर में धर्म अथवा धर्म ग्रन्थों की अभिलाप अथवा "मेता धर्म" "तेरा धर्म" के नाय को छोड़ देते हैं। ऐसे लोग धर्मग्रन्थों का साध्य नहीं साधन मानते हैं, इन साधनों द्वारा जैसे ही ये अपने श्रृंद व्रहाण्ड में बृहत व्रहाण्ड की अनुपूर्ति कर लेते हैं, धर्मग्रन्थ, मन्दिर, मस्जिद, चर्च आदि सभी साधनों को त्याग देते हैं, क्योंकि वे धर्म के उद्देश्य की प्राप्ति कर चुके होते हैं। मानवता के विकास के वर्तमान अवस्था में ऐसे पूर्णतः प्राप्त मानवों की अतिशय कम हैं, परंतु सम्पूर्ण मानव जाति का एक बड़ा भाग इसकी आवश्यकता का
अनुमान कर रहा है।

सभी धर्मों का सम्बन्ध मानव में निहित अतीतिन्द्रिय शक्तियों से है। ये अतीतिन्द्रिय शक्तियाँ ही उन्हें पशुओं की श्रेणी से उठाकर मानव की श्रेणी में प्रतिष्ठित करती हैं। उसकी यह दृढ़ धारणा भी है कि इस जीवन से परे जो वस्तु है उसे जाने बिना इस जीवन की कोई उपयोगी योजना नहीं बनाई जा सकती। दूसरी ओर विज्ञान का वास्तव इस जीवन से होता है। अतः यह मान्य नहीं किया जा सकता कि दोनों के मध्य, तथाकथित विद्याओं को सुलझाया नहीं जा सकता। मानवता के सम्पूर्ण विकास के लिये दोनों का सम्बलन आवश्यक है, एक पर जोर देकर दूसरे को उपेक्षा करने के परिणाम सामने हैं। दोनों की शिक्षा द्वारा छात्रों के मानसिक विकास का विस्तार होगा और एक अखण्ड शिक्षा प्रणाली प्रतिष्ठित हो सकेगी।

यह भी कहा जा सकता है कि रेलिजन, धर्म अथवा मजहब यह ज्ञान है जिसके द्वारा इस जीवन तथा जीवन से परे, मानव को यथार्थ संतोष और आनन्द की प्राप्ति होती है।

इसी हेतु सभी धर्मों में ईश्वरीय आदेश अथवा देवी आदेशों का प्रकरण हुआ है, जिस पर इस जीवन की योजना आधारित की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में इन्हें ईश्वरीय प्रकृति के नियम कहा जा सकता है, जिन्हें सभी राष्ट्रों के भ्रामकों, महापुरुषों, पैगम्बरों, श्रद्धाहों ने अपनी अपनी भाषा और मानसिक विलक्षणों के अनुरूप दृष्टिगोचर करवाया है। विज्ञान से इन नियमों का अन्तः सम्बन्ध है, संसार के सम्बन्ध में इस सम्बन्ध पर प्रकाश दालना समय की महती आवश्यकता है। इसके पूर्व कि धर्मविहीन विज्ञान द्वारा अर्जित सहारक शक्ति सम्पूर्ण मानव सम्पत्ति को निगाल जाये, विज्ञान और धर्म को परस्पर एक दूसरे से सहयोग करते हुए संसार की विकासता में छिपी हुई सार्थमूल एकता में, दूढ़ विश्वास उत्पन्न करना होगा, ताकि मानवों, देशों धर्मों और प्रजातियों के मध्य उठ रहे संदेह, विद्वेष, संघर्ष और उन्न नीचे के बादल छुट जायें। दोनों को यह भी बताना होगा कि सत्य, विज्ञान, यंद, कुरान, बाइबिल,
जब-आयेस्ता, गुरुग्रामः साहिब, हकीकत, मरीफत, नासिस, ज्ञान, आदि सभी का अर्थ और उद्देश्य एक ही है।

सार्वभौमिक धर्म—विज्ञान अर्थात सार्वभौमिक सहमति : तीन—आर की शिक्षा का प्रचलन लम्बे समय से चला आ रहा हैं परन्तु एक अन्य सर्वश्रेष्ठ महत्वपूर्ण चौथे "आर" को इसमें सम्मिलित करते हुए, रैडिय़ा, रायटिंग, रेखाग्रहण और रेलिजन की शिक्षा सर्वश्रेष्ठ विद्यालयों में लागू करने की महत्व आवश्यकता है। इस चौथे—आर की शिक्षा का पाठ्यक्रम बड़ी ही सावधानी के साथ सुनिश्चित और सुनिरीक्षित होना चाहिए। विभिन्न धर्मों के समान सार्वभौम विद्वानों की युगी हुई जानकारी देनेवाला पाठ्य—विवरण लेखार करवाया जाय, जिसमें धर्मों के तुलनात्मक पक्ष पर अधिक महत्व दिया जाय। देश के सभी भागों हेतु इसका कोर्स और पाठ्यपुस्तक समान होनी चाहिए। भारत के सभी प्रमुख धर्मों को इसमें स्थान दिया जाये। इन पाठ्य—पुस्तकों के कोर्स को लागू करने के पूर्व अथवा किसी परिक्षा के पश्चात, विभिन्न धर्मों के निश्चित गणनांक व्यक्तियों की एक छोटी सी समिति के समक्ष अवश्य रखा जाना चाहिए ताकि यह समिति उसकी छानबीन कर ले। उसमें कोई अप्रिय, अविश्वास तथा आपत्तिजनक कुछ न रह जाये। ऐसी पुस्तकों के लेखकों का चयन भी बड़ी सावधानी के साथ किया जाय। ऐसे प्रकाशनों के निर्माण व वितरण का दायित्व केंद्रीय मंत्रालय की समिति पर दाला जाय।

शिक्षाविदों का दायित्व है कि वे वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण करते हुए मत्तनेरों के बीच आम सहमति के बिन्दुओं को प्रकाशित करें। उन्हें यह भी सर्वश्रेष्ठ कराना होगा कि सभी धर्मों में सर्वसामान्य तत्त्व कोन—कौन से हैं? और, किस नीति वे सर्व सम्मत हैं?

ऐसे सार्वभौम धर्म की शिक्षा देना, अनिवार्य कर्त्तव्य :-

धर्म के नाम पर कुछ स्वाभी के लोग दिग्गजित कर दिये जाते हैं। इन दिग्गजित हुये लोगों का रचयिता तद्दूरसार, हठधर्मी, शारुतपूर्ण और धर्माच्यलपूर्ण हो जाता हैं, या ऐसे हठुद्धर्म लोग कहते हैं, "हम अपने बच्चों को ऐसे धर्म की शिक्षा कर्त्तार दे जो
लिये उत्कट अभिलाषा होती हैं. कोई एक धर्म विशेष ही व्यक्ति के लिए अभिवाद्य नहीं हो सकता। अतः अब हमारे समुख दो ही विकल्प शेष रहते हैं, या तो हम सभी धर्मों को अस्तीत्व कर दें या सभी धर्मों को अपना ले। परंतु दोनों ही बातें अवधारित हैं। अतः शीर्ष विकल्प ही मात्र व्यवहारिक उत्तम, संतोषव्यूह और बुद्धिमत्ता पूर्ण, यह रह जाता है कि विभिन्न धर्मों के समान सारस्वती तत्त्वों से नयी पीढ़ी का प्रश्न किया जाय बजाय इसके कि धर्मनिरपेक्षता के नाम पर पोषक आहार गोदामों में बनाय प्रता रहे। जब उत्तम और स्वाभाविक मौजूद तैयार हो तो इससे खाने पर निषेध क्यों?

कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि अतीत में धर्म से जो अपेक्षायें की गयी थीं, उन्हें उससे बुरे तरीके से सूचना किया। अतः: आज उन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिये दर्शन विज्ञान, विधि और कला आदि को जुटाया गया है इसीलिए किसी भी प्रकार के धर्म की आवश्यकता नहीं। परंतु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस तीन-चार वर्षों का समूह मात्र नहीं है जो केवल तीन-चार विभिन्न मात्राओं में ही बदला हो। वरन यह एक एकल है अतः: उसे विज्ञान, दर्शन, कला आदि से परस्पर सम्बन्धित, संगठित और संयुक्त करने के लिये किसी वर्तु की आवश्यकता है। वह वर्तु "सेलिजन" धर्म या मजहब है। वेदान्त, तस्विरुक और नासिस आदि अपने में, विज्ञान, दर्शन और कला आदि के सारस्वत तथ्य समाय युग हुये हैं।

वर्तु: ये ऐसे दर्शन हैं जो धर्म, विज्ञान, कला और विधि आदि को महत्मात्मा संश्लेषित (Synthesize) करते हैं, जो जीवन को स्पर्श करते हुए, उसका शोधन, परिवर्तन और परिपक्वत करते हैं। जान-विज्ञान अथवा धर्म-विज्ञान का क्षेत्र पृथक पृथक निर्धारित किए जाने के कारण ही भेदात्मक बुद्धि से युक्त विश्लेषण की प्रधानता हो रही है और समग्रता के नाव का अभाव हो रहा है। जब कि विद्वानों और कलाओं अलग-अलग होते हुए भी उनहें सदा सत्ता के समग्र नाव में प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता होती है। विश्लेषण को संश्लेषण के नाव में रखना आवश्यक होता है। तमाम विषयों को अंतर्विश्लेषक स्वतंत्र बना देने से कुछ सरलता मिले ही हो परंतु इससे विषय की विज्ञान की स्तृति भी सीमित हो।
जाती हैं।

इस संशोधनकशित के अभाव में ही आये विन बड़ी संख्या में मुन्नथ अपने विचार, मत, सिद्धांत, पार्टी आदि भी बदलते रहते हैं। ऐसे ही परिवर्तन, राजनीति विज्ञान, इतिहास, विज्ञान, दर्शन, कला आदि के क्षेत्र में होते रहते हैं। वस्तुतः आज के युग में यह परिवर्तनशीलता इतनी अधिक बढ़ गई है कि आदर्शी तरह-तरह के वादों (Ism) के फेर में पागलों की भौति इधर उधर लुढ़कता रहता है, इतना ही नहीं वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति के लिए भी इन वादों का मुखिया बदल बदल कर पहला लेता हैं। अतः सर्वश्रेष्ठ इस सार्थकता तथ्य, संशोधनता करने वाले दर्शन (धर्म, धर्म निधि, मजहब आदि) का पुनरुत्थान ही, एकमात्र नेहरू है और इसके लिए, चार-आर की चुनिंधित, आधारमूल-शिक्षा सामान्य रूप से दी जानी चाहिए।

धर्मों में सहमति :-

जैसा कि पिछले पृष्ठों में कहा जा चुका है कि एक सार्वभौम धर्म की उद्देश्यणा, जनताभित्र आधारों पर की जानी चाहिए, अर्थात सामान्यतः बहुमत के मानदंड को अपनाते हुये, इसमें वैज्ञानिक यथार्थता को यथासम्भव समायोजित किया जाय। इस सार्वभौम धर्म में उन सत्यों और आचरणों को सम्मिलित किया जाय जिन पर सभी वर्तमान धर्मों की सर्वसम्मत सहमति हो। वस्तुत: सभी धर्मों एक समान सार्थक सत्यों की शिक्षा देते हैं और सभी धर्मों के पैगम्बर, मसीहा और ऋग्बिक्षण आदि भी परस्पर सहमत हैं:  

ऋग्वेद, "सत्य एक ही है। गुणीजन उसे भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं।" हरदीस, "जितनी आत्मायें हैं, उतने ही अल्लाह के रास्ते हैं।" कुरान (सूरा 17, आयत 110), अल्लाह कह कर पुकारो या रहमान कहकर, जो भी कह कर पुकारो, उसके सभी नाम अच्छे और कल्याणकारी हैं।" जोरोस्ट्रोस्ट्रोय, "और हम संसार के उन सभी, पूर्वाकालीन धर्मों का आदर करते हैं जो सदाशीर की और प्रबुद्ध हैं।" बुद्ध और जिना (जैन), अलीत
और भविष्य की बातें कह चुके हैं। बुद्ध और तीर्थंकर लोग उन्हीं मूलमूत्र सत्यों को बार बार प्रकाशित कर चुके हैं। नाईमिल, "क्या कोई ऐसी बात है जिसे कहा जा सके यह नई बात है। जो कुछ हमारे सामने है, वह पूर्वकाल में रह चुका है। इस सूर्य के नींव कोई भी वस्तु नई नहीं है।" कुरआन, "हर प्रजाति में उपदेशक भेजे गये हैं ताकि वे उसकी तात्त्विक अपनी जुबान में दे इस तरह उसके अर्थों के बारे में कोई सन्देह नहीं रह सके।"

वैदिक धर्मग्रन्थों में बार बार कहा गया है कि आत्मा की कोई जाति, सम्राट, रंग, प्रजाति अथवा सिंधु नहीं होता। वस्तुतः केवल नामों और शब्दों का ही अन्तर है परंतु सब में निहित विचारों का एक ही तात्पर्य है। यथा, अल्लाह का अर्थ है गोड, और अकबर का अर्थ है महानतम। इसी तरह ईश्वर या देव का अर्थ भी गोड हैं, परम या महादेव का अर्थ हैं ग्रेटेस्ट अल्लाह-अकबर का अर्थ है परमेश्वर या महादेव। रहीम और शिव का सहिष्णुतापूर्ण तात्पर्य हैं, दयालु और उदार।

धर्मों में यदि कुछ अन्तर मिलता है तो वह सार्थवीन नाराय नावों में, भाषा अथवा शब्दों में: विभिन्न धर्मों के संस्थापकों, पैगम्बरों आदि ने देश काल और परिस्थितिनुसार एक ही शाश्वत धर्म के, कभी इस पक्ष पर हो कभी दूसरे पक्ष पर जो दिया हैं। सार्वभौम रूप में, धर्म, रेलिजन, विद्या, इस्फाहन, विज्ञान आदि, सनातन, सार्वभौमिक, वैयक्तिक, अर्थात्विक और अपरिवर्तनशील है, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार गणित के सिद्धान्त।

दूसरे शब्दों में तथाकथित विभिन्न नये धर्मों के संस्थापक वस्तुतः एक ही सार्वभौम सत्य का पुनर्गृह करने वाले हैं। जिसे उन्होंने नयीन जीवन परिस्थितियों के अनुसार नयीन भाषा और स्वरूप में प्रस्तुत किया। अतः इन्हें सुधारक कहना ही उपयुक्त होगा। इस तरह कोई भी धर्म नया धर्म नहीं हैं। सभी विशालों नामों से पुकारे जाने वाले धर्मों का उदय एक ही शाश्वत सार्वभौमिक धर्म हैं। चूँकि नये कहे जाने वाले धर्मों के पैगम्बरों या सुधारकों तथा
उनके अनुयायियों ने इस शास्त्र धर्म के मरम्मस्थल के चारों ओर तरह-तरह के संस्कार, विधि-विधानों की रचना कर दी, अतः इन्हें विशिष्ट नामों से पुकारा जाने लगा और इस तरह ये धर्म नये प्रतीत होने लगे, कालान्तर में इन नये संस्कारों, विधि-विधानों का ही वर्चस्व हो गया और शास्त्र धर्म के मरम्मस्थल ढक गये, साधनों ने साध्य को निगल कर, स्वर्ग को साध्य के रूप में प्रस्तुत करना प्रारम्भ कर दिया। नई नई सम्पत्तियों के उड़ खड़े होने और उनके धूमिल पड़ जाने की पृष्ठभूमि में भी यही कारण हैं। ये सम्पत्तियें नये कहे जाने वाले धर्मों के साथ ही उठ खड़ी हुईं और उनके धूमिल होने के साथ ही धमिल हो गयीं।

विनिम्न धर्मों के मध्य विद्यामान ऐसी सहमति को खोज कर उसका अनुसरण करने और उसे हृदय से लगाने में एक उल्लास है और इसके विपरीत सार्थक मेधाओं का अनुसरण करने में निराश हुई। अपने प्रिय मित्र या प्रेमिका को उसके विशिष्ट या सुन्दर वस्त्रों से ही पहचानने में, तो यही आंका जा सकता है कि हमारी मित्रता या प्रेम उसके वस्त्रों से हैं जबकि वास्तविकता यह है कि हमारा वह आराध्य तरह तरह के वस्त्रों में तरह तरह की भाषायें बोलता हुआ विनिंश स्थानों में प्रकट हुआ।

जो दूसरों में गुण देखते हैं, दूसरे उसमें भी गुण देखते हैं। इसी तरह जो दूसरों में गुण व दुगुण समझते देखते हैं तो दूसरे भी उसमें गुण व दुगुण देखने लगे। संबंधों का मनोविज्ञान हमें यही बताता है कि यदि किसी में कोई सदुगुण व्यक्त न हुआ हो, फिर भी यदि हम उसे उक्त सदुगुण से युक्त करें, तो उसका जागरूक मस्तिष्क उक्त सदुगुण के विचार से परिपूर्ण हो उठेगा और इस तरह हम उसमें विद्यामान परस्तु सुंदर सदुगुण के बीज को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। शिक्षा द्वारा विनिम्न धर्मों के बीच परस्पर ऐसी ही प्रशंसा के भाव उत्पन्न करने की आवश्यकता है। तुलनात्मक धर्मों की तदनुरूप शिक्षा द्वारा इसे सहज बनाया जा सकता है।

सभी धर्मों में सार्वभौम और असार्वभौम बातों का विमान : किया गया है। इन सभी धर्मों के सभी आधरणों अथवा सम्पूर्ण भाग को समान रूप से आवश्यक नहीं बताया गया?
है सभी धर्मों में इसका स्पष्ट विवादन, आख़्तिकर-आप्सानल, मोहकामत-मुहावऱ्य, नित्य-काम, आवश्यक कह कर किया गया हैं। सभी धर्मों में इन कर्तव्यों को देश, काल तथा परिस्थितिनुसार, स्पष्ट रूप से विभाजित किया गया हैं, यथा,

महाभारत (शान्ति पर्व), "समय परिस्थिति और स्थान के परिवर्तन द्वारा सदैव कर्तव्यों में भी परिवर्तन हो जाता है, शान्ति के समय मानवों के लिए जो नियम होते हैं, संकट के समय वही नियम विपश्चित हो जाते हैं।" बाईबिल, "इस स्वर्ग के अन्तर्गत प्रत्येक बात और प्रत्येक संकल्प के लिए एक मौसम और समय निर्धारित है..............जन्मने का और मृत्यु का प्राप्त होने का, पीढ़ लगाने का और तोड़ने का, मारने का और मुक्त करने का तोड़ने और बनाने का हसने और रोने का।"...... भूमि संत मौलाना जलालुद्दीन रूफी ने मजहब की इन सार्वभौम व असार्वभौम बातों पर बड़ा जोर दिया है इनसे उस्कृत" तथा "फूस" की संज्ञायें दी हैं। गीता में कृष्ण ने उन लोगों की कड़ी निन्दा की हैं जो वेदों के आन्तरिक ज्ञान की अनुपेक्षा करते हुए सदैव वाह्यावधारों में लगे रहते हैं।

रेलिजन की प्रकृति : रेलिजन शब्द लैटिन भाषा के 2 बोल "से" "सिगेयर" का योग हैं जिसका लाभ है। पुनः बांधना। अर्थात् मानव जाति को परस्पर प्रेम, सहानुभूति, अधिकारों और कर्तव्यों के साथ-साथ ईश्वर के बंधन में बांधना। साथ ही, रेलिजन वह प्रवास भी करता हैं कि उसे पुनः उस विश्वास के पास वापस ले जाय (बंधन में बांध दे) जहाँ से उसकी निम्न प्रकृति बाहरबाहर उसमें इन्द्रधनुश भोगों का तींग्र लालसा उत्पन्न कर, साथ छुड़ा देती हैं। इस तरह रेलिजन वह शक्ति बन जाता हैं जो ईश्वर के सामान्य बंधन द्वारा मानवों के हृदयों को परस्पर बांधता है।

धर्म की प्रकृति, "धर्म" शब्द भी "रेलिजन" के सहूल है। "धृ" से लाभ है, परस्पर विश्वास करना और बांधना।" जैन संत के अनुसार, "धर्म वह हैं जो प्राणी को संसार के प्रवृत्त शोकों के पंजों से छुड़ाकर, सर्वोच्च परम मुख की और सीमाता से ले जाता हैं।

महाभारत (शान्ति पर्व), धर्म वह हैं जो सभी प्राणियों को दूर्दा के साथ परस्पर, अधिकार
और कर्त्तव्य के बंधन में बांधता हैं। साथ ही उन्हें कर्म और अकर्म के बंधन में बांध कर, मलाई के लिये पुरस्कृत कर और कुशाई के लिए दण्ड देकर, मानव जाति का संक्षण करता है।

सर्वव्यापी आत्मा की एकता ही शास्त्र धर्म है। मानव जाति को परस्पर एक समाज में बांधना तब तक असम्भव है जब तक उनमें परस्पर आदान-प्रदान न हो और उनके अधिकार-कर्त्तव्य निर्भर न हों, दूसरों के लिए वे यज्ञ, कुरबानी या सेवक सेवाकार के कार्य न करे। किसी व्यक्ति को स्वयं का आभास तब तक असम्भव है जब तक उसमें दूसरे या दूसरों के लिए आत्म परिप्रेक्ष्य न हो। व्यक्ति को स्वार्थपूर्ण आत्माविश्वास के स्थान पर अपने आप पर निस्कार्धताओं और आत्मनिरोध के प्रभाव डालकर (बंधन) आत्म-संयम व आत्म परिप्रेक्ष्य ग्रहण करना चाहिए।

इस्लाम के अर्थ : इस्लाम शब्द का अर्थ बड़ा गहन और उदार है तथा यह रेलिजन शब्द के सारतत्त्व को दर्शाता है। यह शब्द अरबी के “सल्म” से लिया गया है। जिसका लाभप्रद है शाइन, आर्थिक ईश्वर को शाफतापूर्ण ढंग से स्वीकार करना। ह्यूम आत्मा का महान आत्मा के समक्ष शाफतापूर्ण समर्पण, राजनीति में जाना, प्राणियों का आनंद। अंग्रेज़ी वादिता से निकल कर विश्वासिता में निवास करना। इस तरह धर्म शब्द की भौतिक इसका लाभप्रद भी सबको परस्पर बांधना है, अन्योन्नमित कर्तव्यों-अधिकारों और दिव्यता की इच्छा के समक्ष समर्पित होने के बोध द्वारा। हमें सामान्य रूप से, दिव्यता की इच्छा का बोध, सार्वजनिक सार्वभौम धर्म, वैदिक सार्वभौम और आध्यात्म विश्वास द्वारा होता है और विश्विस्त रूप से, उन महान पैगाम्बरों, सत्ताओं, अन्य लोगों द्वारा बनाये गये विधानों द्वारा जो सभी देशों, राष्ट्रों, प्रजातियों में उत्पन्न हुये और जिन्होंने विश्वव्यापी मानव जाति के सभी वर्गों-व्यक्तियों के लोगों की प्रकृति और आवश्यकताओं को जाना। गज़बई : इस्लाम में मजहब का अर्थ है “मर्म” अर्थात सदाचार, खुशाली और ईश्वर का मर्म।

सभी धर्मों में तीन प्रमुख मर्म, विश्व के सभी प्रमुख धर्मों को तीन प्रमुख मर्म, सभी या अंगों में विविध रूप से सकता है :
वैदिक धर्म में इन्हें, ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म-मार्ग कहा गया है। इस्लाम में इन्हें, हकीकत या अकादम, तरीकत या इबादत, तथा शरीयत या मामलात कहा गया है। ईसाई धर्म में इन्हें, नासिस्तिज्ञ (जानवाद), पाइटेट्ज्म (पुण्यशीलता) और इनअरजिया (कर्मठता) कहते हैं। जैनवाद में इन्हें, रलनय की संज्ञा दी गई है, जितना अभिलाषा, जितना ज्ञान और जितना आचरण। गौतम बुद्ध ने यथापि अश्वार्थ मार्ग का उपदेश दिया है फिर भी उनमें से तीन प्रमुख माने जा सकते हैं, सम्प्रति दृष्टि, सम्प्रति संकल्प और सम्प्रति व्यायाम। बुद्ध ने जो अन्य पांच मार्ग बताया हैं, वह देश, काल और परिस्थितिनुसार उपयोगी ही होंगे और अन्य विभिन्न प्रकृति के लोगों को आकर्षित करते होंगे तथा मध्यम मार्ग के अनुरूप इशार प्राप्त या निर्धारण का मार्ग सरल बनाते होंगे।

धर्म के इन तीन मार्गों या रूपों की, शिक्षाविदों हेतु उपादेयता: शिक्षाविदों के लिए यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने योग्य है कि, सभी धर्मों में निहित इन तीन मार्गों के अनुरूप, शिक्षाविदों भी मरतिक्ष, हृदय और शरीर का योग अध्याय बुद्धि, आवेद्यों और शरीर का योग है। यथार्थ तथा उत्तम शिक्षा भी वह है जो विद्यार्थी के मरतिक्ष को, उपयोगी। सांस्कृतिक और व्यवसायिक ज्ञान के साथ साथ, उसके आवेद्यों को अनुसारित करे तथा उसमें ऐसी दृष्टि इत्यादिन शिक्षा भर दे जिससे वह सदाभारी बने। शारीरिक शिक्षा द्वारा उसे सत्य, स्वस्थ और सुदर्शन बनाने के साथ उसमें व्यवसायिक कर्म—कौशल उत्पन्न करें।

शिक्षा के क्षेत्र में भी इसे “रलनय” मानना अच्छी बात ही नहीं वरन् आवश्यक है। पूर्व और पश्चिम दोनों के, शैक्षिक इतिहास में ऐसे विभावत लोगों के नाम गिना याता है कि जिन्होंने बड़ी ही योग्यता के साथ, शिक्षा का ऐसा एकीकृत सिद्धांत प्रस्तुत किया जो मरतिक्ष, हृदय और शरीर के शिक्षण-प्रशिक्षण पर निर्भर है। वस्तुतः मानने में निहित इन तीनों शवित्यों के सम्प्रदाय और संयुक्त विकास करने की आवश्यकता है। पर्याप्त निषेधात्मक धर्म निरपेक्ष शिक्षा की छत्रायाम में पले कुछ आधुनिक विचारक मरतिक्ष और शरीर की शिक्षा पर समान व्यवहारिक विचार रखते हुये भी “हृदय की शिक्षा” को ऐसी
प्रक्रियाओं मानते हैं जिससे, हृदय का ऐसा विकास, पूर्णताप के निर्विकार्यात्मक धर्मनिरपेक्षता के कारण संकुचित नहीं रहता हैं। जबकि सकारात्मक धर्म, निरपेक्ष शिक्षा और अन्याय द्वारा भावनात्मक एकता, श्रम, उच्च आरंभी आदि को उस स्थिति तक विकसित किया जा सकता है, जिसमें सभी अपनी आत्मा और दैवी आत्मा के बीच पूर्ण एकत्रित रहता है। जिसमें मानव—मानव के बीच के एवम् मानव और ईश्वर के बीच के सारे में ही समाज हो जाते हैं। यह किसी एक संगठित धर्म के अध्ययन को प्रभाव देते हैं की बात नहीं है वरन सारे धर्मों के आध्यात्मिक सार को बात है। जिसके लिये किसी सन्यास या वैराग्य की अति तक जाने की बात भी नहीं है: वरन ऐसी उन्नयनवाद को पहुँचाने की यह प्रक्रिया कई बातों से किसी का परिणाम हो सकती है; यथा, पवित्रता, निर्माण, प्रेम और धर्मनिरपेक्ष योग साधना द्वारा मस्तिष्क पर नियंत्रण, ध्यान की एकाग्रता आदि। अन्ततः यह, इस तरह स्वप्नसारि, स्वप्नपूर्णता और स्वप्नप्याकरण की ही बात आती है किसी धर्म विशेष के प्रभाव की नहीं वरन सारे धर्मों के सार्वभौम सिद्धांतों की एकता। दूसरी बात यह है कि ऐसी आध्यात्मिक संस्कृति द्वारा, पूर्व (निरपेक्ष) अध्ययन्यों के भौतिक अवधारणाएं और तकनीकी विकास को कभी भी हानि नहीं पहुँचाती और ना ही इसे मिश्रित प्रभावित किया जाता है। इसके मध्ये अन्य एकता की यह आध्यात्मिक—संस्कृति, सर्वजन एकता का उद्देश्य करने के साथ एकता मस्तिष्क, हृदय और शरीर के प्रशिक्षण के लिए एकीकरण और समन्वय लक्ष्य एकता और अनुपस्थित जीवन और शिक्षा के उच्चतम लक्ष्य " मानव को सम्पूर्ण बनाने " की पुष्टि करती हैं। इन तीनों के योग की शिक्षा से, परस्पर कोई रिश्ते नहीं वरन छात्रों का मानसिक विकास ही होता है। यही, ज्ञान—विज्ञान और धर्म—विज्ञान का संयोग है। यही वैज्ञानिक—धर्म हैं, यही अक्षरद शिक्षा प्रणाली है। ऐसी शिक्षा से ही आत्मविज्ञान आता है और आत्मविज्ञान से अंतरित ब्रह्म भाव या ईश्वर्त जाग उठता है।
सभी धर्मों के बौद्धिक पक्ष या ज्ञानमार्ग में पाये जाने वाले समान सत्य
हकायक (कुछ नृपतिरी कृत), दक्षाय (विद्वाना कृत), सर्वफल (ज्ञान का बाते),
अकार्य (निष्ठा), आदि सभी के लक्ष्य का संघना धर्म का ज्ञानकांड दी है। सभी धर्मों
का ज्ञान मार्ग या बौद्धिक पक्ष एक यही बात कहता है कि किनी हो दिखने वाली वस्तुओं
के बीच में अल्पतम दूरी होती है। समस्त धर्म उसी एक मात्र सत्य, आलम्ज्ञान अथवा ईश्वर
प्राप्ति की ओर ले जाते हैं। जिस तरह पूरी रेखा गणित-परिभाषाओं, स्वयंसिद्ध मान्यताओं और
सूत्रों में पहले से ही सिमटी हुई हैं। उसी प्रकार सम्पूर्ण धर्म, ज्ञान और विज्ञान भी तीन
नियमों, ईश्वर-प्रकृति और मानव के अन्तर्गत सिमटा है। तीन का यह समूह भी एकत्वपूर्ण
है क्योंकि ईश्वर अपने में प्रकृति और पुरुष (मानव) को समाहित किये हुए हैं। अतः यह
कहा जा सकता है कि ज्ञान मानव में स्वयंसिद्ध है। मानव की इस अन्तर्निहित पूर्तिता
को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता सब अन्दर से ही उदित
होता है। यही तीनों का "नवव्यवस्था" प्रारम्भ से ही मनुष्य को पूर्ण मानता है। मनुष्य
ने अपने दुःखमों द्वारा अपने को अपविलय बना दाला। किन्तु उसे अपने मौलिक स्वरूप को
पाना है जो परिवर्तन है। कुछ धर्मों में यही बात रूपकों, कथाओं और प्रतीकों के माध्यम से कही
गयी है। परन्तु सभी का मन्त्र प्रायः है कि आत्मावशस्त्र ही पूर्ण है और मनुष्य को अपने
मौलिक स्वरूप को पाना है। कैसे? ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करके। आत्मा और ईश्वरत्व के
मध्य पड़ा अज्ञान का पद ज्यों ही हटता है, वह सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है।
ईश्वर और ईश्वरीय प्रकृति :— तमाम सत्यों का एक बौद्धिक सत्य यह है कि मानव
ईश्वरत्व का ही सार तत्त्व है, ईश्वर ही प्रकृति है और प्रकृति ही ईश्वर। मानव अपरिज्ञानशील
आत्मा का परिवर्तित होनेवाला वस्त्र है। जीवन का अर्थ और योजना यही है कि, चूंकि
ईश्वर ने अपने आप को मानव में विस्मृत कर दिया है अतः मानव को ईश्वर की स्पृहा के
साथ तासाल्प्रेरणा बनाये रखना चाहिये। परन्तु यह तासाल्प्रेरणा बनाने में सांसारिक भूमिका भोग मुख,
और तरह तरह की लालसायें बढ़के बनती है। सभी धर्मगणनों में अति संसारिक व्याख्याओं में
फंसने के कारण आज्ञान उत्पन्न होने की बात कहीं गई है, यथा,
कुरान, (सौ. 10 आ. 63) में, “संयमी पुरुष को अल्लाह का दोष कहा गया है। जो धैर्यवान पुरुष इन्द्रियों पर संयम रखता है, वासनाओं का निग्रह करता है, जुबान को अनुशासित रखते हुये जीवन को निरन्तर धर्म-पद्ध पर आरूढ़ रखता है, वही सही अथवा में अल्लाह का दोष है।” बाइबिल, “तुम्हारे विद्याओं में यह नहीं लिखा है, परन्तु मैं कहता हूँ, तुम लोग ईश्वर हो...देखो। किंगडम आफ गाड़ तुम्हारे में ही है... तुम लोग यह नहीं जानते हो कि तुम लोग ईश्वर के मन्दिर हो... यह हम में से किसी से भी दूर नहीं।

कुरान, मैं तुम्हारी रचना की रूह हूँ, ये तुम लोग बनों नहीं देखते। मैं तुम्हारी हर सांस में हूँ लेकिन तुम लोग सही निगाह (ज्ञान) के बगैर अन्य हो और मुझे नहीं देख पाते। गीता, सव गुरुओं में अत्यंत गुरुयण-हर्षपूर्वक मेरे उत्तम वचन जो पहले भी अनेक दस्त कहें गये हैं, तू फिर से सुन,... तू मुझे चित्तवाला हो, मेरा भवत अर्थात् मेरा ही भजन करने वाला हो... मुझ वासुदेव में ही (अपने) समस्त साध्य, साधन और प्रयोजन को समर्पण करके तू मुझे ही प्राप्त होगा। .... मुझ से अपने कुछ है नहीं तू ऐसा निश्चय कर...... मैं हृदय में स्थित हुआ प्रकाशम मन दीपक से अज्ञान जनित अज्ञात का नाश करता हूँ।”

ऐसे ज्ञान की शिक्षा सभी पैगम्बरों, ऋषियों, नबीयों, रसूलों, अवतारों और मसीहाओं ने दी है। इसे ही परा-विधा, इल्म-सिना, डाविटन आफ हार्ट या सिन्ट, दकायक, एसेटराइक-डाविटन, आफ मायरस्ट्रोज आदि कहा गया है। प्रत्येक धर्म में यह रहस्यवाद है तथा सभी धर्म, ‘हृदयों के सिद्धांत’ हैं, “इल्म-इं-सिन” हैं।

प्रत्येक धर्म में उस् ईश्वर को भावोन्माद में किये जाने वाले उच्चारण भी अत्यन्त सामान्यता रखते हैं, यथा, सूफी लोग उसके प्रति उदगार प्रकट करते समय कहते हैं, अनल-हक, हक-पुप, कबल अल-इलाह बैतुर-रहमान। उपनिषद में भी समान उदगार प्रकट किये गये हैं, “अहे ब्रह्माण्ड-तत्त्वमसित”। बाइबिल, “तुम ईश्वर के जीवित मन्दिर हो। ...तुम ईश्वर हो।” ज्यूस लोगों के ऑल टेस्टामेंट में भी ऐसा ही कलेमा अथवा महाकव्य है, “मे ही (आत्मा) ईश्वर हूँ, इसके अलावा कुछ भी नहीं है।” जोसेफियन, “मैं उसे ही सर्वोच्च रूप में जानता हूँ, बाकी सब मैंने मस्तिष्क से निकाल दिया है।”

[153]
पद्भ और जैन पंथ की शिक्षायें भी इस बिन्दु पर समान हैं। महात्मा बुद्ध ने समाधिवस्था में उदागरक्रम किया था, "मैं ही ब्रह्म हूँ, सर्वोच्च प्राणी हूँ, अद्वैतीय हूँ, सर्वज्ञ हूँ, सबका स्वामी हूँ।"

ईश्वर अथवा सर्वव्यापी आत्मा के सम्बन्ध में सभी धर्म समान रूप से एक ही ज्ञान पथ का अनुगमन करते हैं। सभी के कहने का तात्पर्य है, मैं ही आत्मा हूँ। सभी में विभिन्न तात्पर्य का सिद्धांत है। सभी कहते हैं, सर्वरूप एक ही तत्त्व हैं, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। इस सम्बन्ध में विभिन्न धर्म ग्रन्थों की सभी आधारभूत बातें विवाद रहित हैं। यथा, (i) चेतना तत्त्व अपरिवर्तनशील है। (ii) लुम लोग उसे बूढ़ते फिरते हो जो कभी खोया नहीं। (iii) मैं ही मूर्त, अमूर्त तथा पूर्ण हूँ। (iv) यद्यपि मैं निराकार हूँ फिर भी मैं सारे आकारों को प्राप्त किये हूँ। (v) वह सब वस्तुओं को बड़े हुए है, वह सृष्टि और महानतम है। मैं ही सबमें हूँ और सब मुझमें है।

सभी धर्मों में उस सत्ता को अद्वैतीय "विलक्षण" घोषित किया गया है। केवल आत्मा ही उसे जान सकता है। सभी में उसने कहा है, "मैं किसी वस्तु द्वारा प्रमाणित नहीं किया जा सकता, मैं ही प्रमाणित किये जाने योग्य वस्तुओं को प्रमाणित करता हूँ।"...किसी ने मुझे जन्म दिया या मृत्यु को प्राप्त होते नहीं देखा।...चित्त शक्ति अथवा आत्मा, सर्वभौमिक, सर्वव्यापी, परिपूर्ण और अन्तर रहित हैं।...पृथक मालूम पड़ने वाली सभी वस्तुयों, आत्मायें, शरीर या नेत्रात्मा, भ्रम हैं। यथा: कुरान ईस्वार चेतना-शक्ति सब कुछ आवृत्ति किये है। बाईबिल, लार्ड ने कहा, "क्या स्वर्ग और धरती मुझसे भरी हुई नहीं है।" उपनिषद, "वह महान से महानतम और मुंद्र से मुंद्रतम है।"

सभी मानयों में, पृथ्वी होने की भावना या अहैवाडिता, "मैं हूँ। सुम तुमहाँ" की भेद बुद्धि गहराई से व्यक्त है। यह सब अनुमूल्य करना बड़ा दुःखी और पेशीदा है कि, "मैं मात्र सभी में व्याप्त हूँ, मैं ही मात्र, सभी की शक्ति, सभी को नियंत्रित करने वाला, चलाने वाला, सभी के मुख से खाने वाला, सभी के सुख में सुखी और सभी के दुःख में दुखी हूँ।" परन्तु यही सब धर्मों का आधार है, हृदय स्थल है। इस अपरिपा एकता री, अपरिपक्वता कम

[154]
करना, मानव जाति को इस बारे में और जागरूक बनाना, धर्म शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है।

सभी धर्म नैतिकता की एक अंदिरा आधारित रख देते हैं, जब वे मस्तक और आत्मा को एक ऐसी स्थिति में ला देते हैं, जहाँ सीमित असीमित में पिलीन हो जाता है, जहाँ व्यक्ति को दूसरे के हित में अपना हित और दूसरे के अहिंसा में अपना ही अहिंसा होते प्रत्यक्ष दिखता है, जहाँ भावनात्मक और बौद्धिक अहमवादिता दुःख जाती हैं और बौद्धिक तथा भावनात्मक परोपकारिता का उदय होता है और सार्वभौमिकता श्रेष्ठ रह जाती हैं, व्यक्तिगत स्वार्थ पिलीन हो जाते हैं और लघु रूप से सुखकारी होने के कारण नैतिकता की अंदिरा आधारित रख देता है।

एक बड़ा खतरा: इन सब बातों के आस-पास एक बड़ा खतरा भी मंडराया करता है।

अतः सभी प्रमुख धर्मों में यह साक्ष्य किया गया है कि स्वयं को सर्वशक्तिमान ईश्वर मानकर अहिंसक का भाव जागृत करना बड़ा खतरनाक है। विभिन्न धर्म-कथाओं में ऐसी घटनाओं, कहानियों के उल्लेख कम नहीं हैं जब लोगों ने अपने को सर्वशक्तिमान घोषित कर तरह तरह के नृसिंह कार्य किये और उसके दृष्टिकोण भी भंगे। वस्तुतः स्वयं को सर्वशक्तिमान घोषित कर अल्माराचार करने वाले लोगों ने अपने स्वार्थों से प्रेरित होकर ही नृसिंह कार्य किये। यथार्थ ज्ञान प्राप्त व्यक्ति ऐसा कदापि नहीं कर सकता, ऐसे कपटी लोगों के कारण ही विश्व के अभिकांश नागरिक में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यक बुराई का वरण किया गया है।

अपने अन्तर्लिङ्ग में ईश्वर खोजते खोजते शरीर की बाहरी सतह में स्थित शैलाना के चंगुल में फंसकर स्वयं को ही सर्वशक्तिमान बताता जसी नीति है जैसे एक ट्रस्टी मालिक बन बैठे। प्राचीन काल से ही, सभी धर्मों द्वारा, मानव और ईश्वर की अभिन्न एकता का उपदेश दिया जा रहा है और ऐसा भी नहीं है कि लोगों ने इसे समझा न हो। फिर भी लोगों ने इस सत्य का दुरुपयोग करते हुए, ऐसे अपने स्वार्थ का साधन बनाया और अपने को ईश्वर घोषित कर स्वेच्छाचारी, अनैतिक और अन्यायपूर्ण कार्य किये, अन्यों में ईश्वरत्व की अपेक्षा की। ऐसे खतरे की समस्याना तभी होती है जब लोगों में यथार्थ धर्म सम्बंधी सामान्य अंदाज़ फूला हो।
बीते युगों में मानव और ईश्वर की सार्वभौमता के सत्य की शिक्षा सार्वजनिक रूप से नहीं दी गई। ज्ञान के इस अनमोल खजाने को केवल कुछ लोगों तक सीमित रखा गया। इसे पृथक सरकारी दुस्तरों से पढ़ाया गया। अतः सीमित लोगों ने ही इससे लाभ प्राप्त किया। शेष लोगों में ब्राह्मणों को ही मिली। ब्राह्मणों से लोगों ने स्वार्थ जोड़ा और तरह तरह के शोषण-अत्याचार किये। परन्तु आज परिस्थितियाँ बदली हुई हैं, लोगों का बाल्यावधि स्तर पहले से उच्च है। सार्वजनिक-अनिवार्य और प्राव शिक्षा के प्रयास हो रहे हैं। यथार्थ धर्म शिक्षा के अभाव में, लोग घमण्डी, कामुक, व्यस्त, व्यक्तिवादी और अहमवादी हो रहे हैं।

भारत में धर्म शिक्षा का यह अभाव, ब्रिटिश वूटनीति और व्यापारिक स्थायी से कारण प्राप्त हुआ। देश स्वतंत्र होने पर, संविधान द्वारा हमने सभी धर्मों के बारे में शिक्षा देने की मौन स्वीकृति अवश्य दी परन्तु उसे लागू करने में हिचक रहे हैं। जब कि, धर्म विद्वान शिक्षा के दुसरे किलोमीटर, विगत 200 वर्षों से प्रत्यक्ष हो रहे हैं। अतः विशेष धर्मग्रंथों में जो अपूर्व और समान सत्य छिपे हैं उन्हें इन ग्रंथों के पंजों से बाहर निकाल कर, सामाजिक लोगों के पंजों से छुड़ाकर, शिक्षा के माध्यम से सर्वश्रेष्ठ बिखर देना होगा। ताकि ये सत्य सभी जनसाधारण युगें, समस्त और पहचानें।

सर्वभौमी की ही आत्मा के बहुत से नाम: सार्वभौमिक-आत्मा या विश्व-शक्ति, विद्वान द्वारा स्वीकृतता तथ्य है जिसके बारे में यह भी सर्वभौम है कि यह अत्याचार है। यदापि सभी धर्मों में इसका एक नाम सामान्य रूप से दिखाई देता है, जिसका तत्परता "मैं" से है फिर भी प्रत्येक धर्मग्रंथों में इसे पृथक नामों से भी उज्ज्वल किया गया है, यथा, वैदिक धर्म, परमात्मा, ब्रह्म। इसलिए एक अद्वैत, में रव, खुदा, मालिक मौला। इससे धर्म, गाड़ परमणु। जोरस्थ्रियन, अहमदजादा। बुद्धवाद, जियोहा। चिख पंथ: सत श्री अकाल (समय काल से पहीं)। बौद्ध पंथ और, अमिताम। जैन पंथ, आत्मा, परमात्मा, निरंजन।

ये सभी नाम स्वरूपों में युक्त हैं जिनका समन्वय व्यक्ति की स्वांत-प्रवांत अथवा प्राणों से है। इस तरह ये प्रत्येक नाम ईश्वर अथवा सर्वभौमी प्राण-तत्त्व की स्तुति करते हैं, कुछ अन्य विशिष्ट नाम, पूर्ण स्वर है यथा, "ॐ" "सोहम" आदि। योग दर्शन में प्राण तत्त्व का
एक पृथक विज्ञान है, जो कहता है, जो प्राण को वर्ष में कर लेते हैं वे अपने व सबके मन, अपनी व सबकी देह, को नियंत्रण में कर सकते हैं। क्योंकि सर्वव्यापी प्राण ही सारी शक्तियों का मूल है। प्रत्येक जीवनार्क की स्वास्थ प्रश्नावस्त्र के साथ “मौलिक” हम सॉड का अज्ञात जन्म चल रहा है। इन दोनों शादी का तात्पर्य क्रमशः “वह में हूं” और “मैं वह हूं” है। प्रत्येक मानव प्राणी बिना मूंग से बोल स्वास्थ प्रश्नावस्त्र द्वारा, स्वरूप तथा सूक्ष्म ऐसे ही नामों का निरंतर जन्म कर रहा है या प्रारंभिक कर रहा है और श्वास प्रश्नावस्त्र युक्त यह जन्म अत्याचार है।

अतः: यह कहा जा सकता है कि विभिन्न नामों वाले ईंधन या विभिन्न नामों से पुकारे जो वाले धर्मों में मूलभूत कोई अन्तर नहीं है। मानव में एक धर्म छोड़ने और दूसरे को ग्रहण करने की जो योग्यता अथवा प्रवृत्ति है, उससे यही प्रमाणित होता है कि मानव जाति की "आत्मा" सभी विशिष्ट धर्मों से श्रेष्ठतम सत्य है।

संसार चक्र, पुनर्वात्मन, नवजीवन या पुनर्जनन: सभी धर्मों के ज्ञान पक्ष में पाये जाने वाले ये अन्य सामान्य सत्य हैं, संसार चक्र, चर्ची-गर्दन, उल्लास-पतन, आरोह-अवरोह, इजाल-इरादक, नजूल-उस्त आदि शाद, क्रम विकासवाद, "Phylogenesis" "Ontogenesis" आदि पौराणिक विचारधारा के शब्दों के समजूत्त और समजदार हैं। कुछ धर्म एक ही आत्मा के, अन्य शारिरों में एक के बाद, दूसरे "नर्जः" की बात कहते हैं। दूसरे धर्म इससे अन्य मोति उन्नति का तात्पर्य लेते हैं। अर्थात् में पुनर्जनन के लिए अन्य शाद "र इनकारनेशन" (दुबारा अवतार) या Metempsyohosis (पुनर्जनन) का प्रयोग किया जाता है। अर्थात् में "तनासुख" कहते हैं। वेदान्त, बौद्ध, जैन और इस्लाम आदि सभी में पुनर्जनन के अनेक उदाहरण विशिष्ट रूप से दिये गये हैं। परन्तु, बाईबिल और कुरान में यद्यपि इसका कहीं विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं है फिर भी उनमें विशिष्ट रूप से इसे अस्तिकर भी नहीं किया गया है। इन दोनों प्राप्ति के कुछ उद्देश्य पुनर्जनन का स्पष्ट संकेत देते हैं।

बाईबिल (मलाश्री) : में इसा मसीह कहते हैं, “पैगम्बर ऐलिजा पुन: ज्ञान बैप्टिस्ट के रूप में आयेंगे, और देखो, लार्ड का महान और ड्राचेन दिन आने के पूर्व, में तुम लोगों के

[157]
पास एलिजा के पास को मेलूगा।” बाईबिल (मेथ्यु): “जीसस ने जान बैप्टिस्ट के लिए एक जनसङ्ग के समक्ष कहना प्रारम्भ किया, जान बैप्टिस्ट के समय तक के सभी पागलबरो और उनके द्वारा कही गई बातों को यदि तुम लोग ग्रहण करोगे तो इस एलिजा (एलिजा) को आना पड़ेगा।” बाईबिल (मेथ्यु): “राह में चलते हुए जीसस ने एक जनसंग व्यक्ति को देखा, तब उसके शिष्य ने पूछा, स्वामी यह जन्म से अन्धा वर्षों पैदा हुआ? इसने पाप किया है या इसके पिता ने? बाईबिल (रोमियो) 7/9, “मैं तो व्यक्ता बिना पहले भी जीत रहे थे, परन्तु जब आज्ञा (कांडन्मेंट) आई तो पाप जी गया और मैं गया।” कुरान में मुहम्मद कहते हैं, “और इस्लाम तुम्हें ईश्वर के पास लौटना है, वह ईश्वर, वह रूह एक मंजिल से दूसरी मंजिल तक, एक स्थान से दूसरे स्थान तक बढ़े ही कहें और अभिषेक के साथ आरोहण कर रही है।” कुरान में कुछ ऐसे मूल पाठ भी हैं, जिनकी व्याख्या इन अर्थों में की जा सकती है, “इस्लाम बार बार मरता है। और जिन्दा होता है, जिस तरह इस दुनिया की रचना और विनाश बार बार होता है। सूफ़ी संप्रदाय का विश्वास है कि, “मुहम्मद अब्राहम के जिनका पुर्जान हुआ और अब्राहम के दो पुत्रों का पुर्जान हुआ था, अल्ला और अल्ला का पुत्र हुसैन। कुरान में अन्यत्र कहा गया है, “वह दुनिया की रचना करता है, वह फिर नई उत्पत्ति करता है, ताकि वह उन लोगों को इसाक के साथ इनाम मिले ते सके जो ख़ुद के राहों पर विश्वास करते हैं और अपने साथियों से मलाई का बताव करते हैं। .. ईश्वर ने कहा, जिस तरह में पहली सृष्टि का प्रारम्भ करता हूं, वैसे ही मैं पुन: रचना करता हूं। .... धरती के बाहर मैंने तुम्हारी उत्पत्ति की है और अब मैं तुमको वहाँ दुनिया मेलूगा, और फिर मैं तुमको इससे बाहर ले आज्ञा, अन्त तक यही क्रम चलता रहेगा।... मैंने तुम्हें फिर दुनिया जन्म दिया ताकि तुम मुझे कृतज्ञता पूर्वक याद करो। .... हमारी मृत्यु के बाद उसने हमको फिर जीवन दिया। उसने तुम्हें पहले भी बनाया और ऐसा ही जो फिर कर सकता है। वह जीतों को मारता है और मृत्युको को जलाता है।” “गौलाना रूम” 1 की सुपरिचित कविता का अनुवाद भी, इस तथ्य की व्याख्या में उपादेय है, “पहले वह

7. मंसवी, किताब (तृतीय), कानपुर संस्करण, पृ. 334
खनिज पदार्थों के रूप में आया, पश्चात कुछ तक वह बनस्पति के रूप में रहा, यह सब भूल कर उसने सवार को खनिज पदार्थ जाना। पश्चात् वह पशुओं की श्रेणी में, बनस्पति की अवस्था भूलाया रहा। इस तरह विभिन्न स्तरों का आरोपण करते हुए, अब वह बुद्धिमत्त, ज्ञानवान और शाक्तिशाली इंसान है। अपनी पिछली सभी अवस्थाओं को भूलकर बुद्धिमत्त की इस स्थिति को पहुँचे हुये इंसान को अभी और भी उठाना है, क्योंकि अभी वह स्वयं से भरा हुआ है, तुच्छ बालों और श्रेष्ठों में संलग्न है। जब वह ऐसा कर लेगा तब, ज्ञान, आश्चर्य और महान रहस्यों के, हजारों अनंत द्वार उसके सामने खुल जायेगा।

खनिज, बनस्पति, पशु, मानव आदि की उत्पत्ति का यह अनुक्रम, वैदिक धर्म तथा आधुनिक विज्ञान द्वारा भी समर्थित है। ज्यूस लोगों की पुस्तक, “कबाला” : में एक सुविधा है, “इंस्वर धातु के रूप में निदामान रहता है, बनस्पति की अवस्था में स्वर्गस्त, पशुओं की अवस्था में जाग्रत होता है और मानव की अवस्था में पहुँचकर अतिशय रूप से स्वतंत्र की अनुभूति करने वाला होता है।” परत्र पौधा बन जाता है, पौधे से जानवर, जानवर से मनुष्य और मनुष्य से आत्मा, और आत्मा से इंस्वर।” जोरोस्ट्रॉयन (गाथा 51–6): “जो लोग अच्छे कार्यों द्वारा महान इंस्वर का अनुग्रह प्राप्त करते हैं, उन्हें अनुक्रम में आने वाले प्रत्येक जन्म में, वह महानतम आत्मा-ज्ञान और महानतम आत्म-नियंत्रण प्रदान करता है। परन्तु जो लोग मलाई के कार्य नहीं बरन बुराई के कार्य करते हैं, उन्हें आने वाले प्रत्येक जीवन में वह दुर्मिल्लित देता है।”

इस भौतिक विभिन्न धर्मों में वर्णित संसार चक्र का पुनर्जन्म की अध्यात्मिक सत्य कोई मौलिक विचेत्त नहीं है। सब मानवता को श्रेष्ठतम बताया गया है। सभी की मौलिक विचारधारा यही है कि मानव को सद्भूम करना चाहिये और दुःख के बचना चाहिये। एकता के अभिलाषा को आम खाने से मतबल करना चाहिये, पैदः गिनने, पानिजिद्य प्रदर्शन अध्ययन अहंकार से बचाकर करना चाहिए।

कर्माणुसार पुरस्कार—दण्ड :- इसे पुरस्कार और दण्ड का सत्य भी कहा जा सकता है जिसकी पुष्टि सभी धर्मध्रुव करते हैं। सद्गुण और श्रेष्ठ कार्य पुरस्कृत होते हैं, बुराईयों और
पापाचार के लिये दण्डित किया जाता है। कुछ आधुनिक विचारक कहते हैं कि, पुरस्कार अध्या दण्ड के द्वारा बालकों में नैतिकता उत्पन्न करना उचित नहीं, इसलिए दूसरी दुनिया अध्या नर्क का भय उत्पन्न किया जाता है, नैतिक नियमों की यथायोग्यता किसी अज्ञात शक्ति के सन्दर्भ में करने से विद्याधिकारियों को सोचने समझने की शक्तियों का कार्य होता है, आदि आदि। वस्तुतः नैतिक शिक्षा इस दृष्टिकोण से अवस्था दी जा सकती है कि, अच्छा करना अच्छे के लिये ही है। जहाँ तक भय स्थापित करने की बात है, वहाँ हम यह नहीं मूलना चाहिए कि संसार के सभी सम्बंधित देशों में मृत्यु दण्ड अथवा जेल की नर्क जैसी कठोर यातनाओं का भय स्थापित कर ही शासन कार्य चलाया जाता है। धर्म, जीवन के तत्त्व कच्चे से दुखित न होने और मृत्यु भय को समाप्त करने के लिए मानव को सातवना देने का बड़ा साधन है। हाँ, दण्ड और पुरस्कार की आत्मा अवस्था त्यात्मा है।

सभी धर्म समान रूप से उद्देश्य करते हैं, "जैसा बोलो, वैसा कारोगो।" कर्म का यह सिद्धान्त वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक है अथवा आत्मा या मन से सम्बंधित है जो "कारण और प्रभाव" अथवा "ग्रिया—प्रतिग्रिया" के पैटर्न में नियमों के समुपल्ला है। कर्म का प्रभाव अन्तर्निहित पर पड़ता है। चूंकि यह अन्तर्निहित या आत्मा सबमें एक ही है अत: किसी को दुख देने से दुख ही प्राप्त होता है और दुखुरूह सुख देने में सुख। मानव के अंतर में सदुर्गों और दुर्गों दोनों का वास आवश्यक रूप से होता है। सभी धर्मों के पुराणों के मूल में अन्तर्ज्ञात के देवासुर संग्राम की ही अलंकारिक चर्चा है। यह संघर्ष बाहर भी सर्वत्र दिखाई देता है।

सभी मानव—प्राणी, चेतन, अचेतन उस एकत्म, रुझल—अरवाह, लुहि आजम, लहि—आलम, परमालम, सूत्रालम, सूत्रालमा, यथ्यालम, अवस्—साउल, यूनिवर्सल स्पिरिट से गुंधे हुए हैं। यह सर्वद्रव्य, सर्वसाधी है। अत: कर्मों के परिणामों से बचना असंभव है। यदि हम अपने हाथों से पैरों पर चोट करें तो क्या हमारे हाथों में दर्द न होगा। सभी धर्मों में पाप—पुण्य और पुरस्कार दण्ड का यह विधान वर्णित है। किसी में स्वर्ग—नर्क की आत्मा है तो किसी में पाप—पुण्य का अविवाद है, तो किसी में इसके वैज्ञानिक रहस्य अथवा
आध्यात्मिक रहस्य को आधार बनाया गया है। इस बारे में यही कहा जा सकता कि, यह तो विभिन्न मानसिक व बौद्धिक स्तर के व्यक्तियों को समझाने के प्रकार हैं। सबका
उद्देश्य एक ही है, मानव को नैतिक व सदाचारी बनाना, उसके दुःखों को समाप्त करना,
उसकी आत्मा और बुद्धि पर पड़े स्वार्थ, लोम, क्रोध, कामकुश्ता और दूषकायों का आवरण
hटाकर, उसे पवित्र व सदाचारी बनाकर, अन्यों व सबके साथ सहानुभूति करवाना। सभी
धर्मग्रन्थों का यही मत्तत्व है।
बाईबिल (याकूब 2/12, 14) : "हे मेरे भाई, यदि कोई कहे मुझे विश्वास है पर वह कर्म
न करता हो तो उससे क्या लाय? क्या ऐसा विश्वास कमी उसका उद्दार कर सकता है।
.... तुम उन लोगों की तरह बचन बोलो और काम भी करो, जिनका न्याय स्वतंत्रता की
व्यक्ति के अनुसार होगा, क्योंकि जिसने दया नहीं की उसका न्याय भी दया के बिना
hोगा।" बाईबिल (लूका, 6/37,38) : "दोष मत लगाओ तो तुम पर भी दोष नहीं लगाया
जायेगा। क्षमा करो तो तुम्हारी भी क्षमा की जायेगी। जिस नाप से तुम नापते हो उसी से
तुम्हें भी नापा जोयगा।" बाईबिल (रोमियो, 2/6) : "वह हर एक को उसके कामों के
अनुसार बदला देगा।" ..... कोई भी मनुष्य जो बोता है वही काटता भी है। ..... पाप करने
का पारिश्रमिक मूल्य है।" गुरुरु पुराण : "यह विचार मिथ्या है कि कोई दूसरा हमें सुख
ya दुख देता है। हम मानव, स्वयं के कार्य और आचरण द्वारा एक दूसरे से बंधे हैं। हमारे
अपने कार्य ही हमारे लिये न्यायोपित फल लाते हैं। "मेरा शरीर।" यह मिथ्या विचार छोड़
dो, क्योंकि इसके बदले में कष्ट उठाने पड़ते हैं। यह सोचा "मेरा करता हूँ" और मुक्त हो
जाओ।" कुरान (सू. 107 आ. 1-3) : "क्यों तुमने उस इस्लाम को देखा जो कम्रों का
बदला दिये जाने को झुठलाता है। वही लोग है जो अनाथ को धरके देता है और मोहलाज
को खिलाने को नहीं कहता है।" जोरोस्ट्रॉन (गाथा 31.13.14) : महान अहरमज्दार भी
प्रतिकार में सारे कार्य, चाहें वह पवित्र हों या अपवित्र, करता है। क्योंकि वह अपनी आखों
से मानव की सारी गुप्त बातें और इच्छायें देखता है, चाहें ये बातें नहीं हों या बुरी। बौद्धवाद
(महावर्ग, 6/13/7) : "यदि कोई मानव, बुरे विचार से कुछ बोलता है या करता है,
कष्ट या दुःख उसका पीछा जस्तू करेगा। जिस तरह जोर लगाकर गाड़ी खीचने वाले बैल का पीछा पहिया करता है।"

प्रकृति एक अविभंगता है। शारीरिक आत्मा मात्र अविभंगता ही नहीं है वरन एकता भी।

श्रेणीक दृष्टि की एकता है अतः प्रकृति की अविभंगता है। इस कारणवश सभी भुद्रतम—महानतम वस्तुओं, ब्रह्मांड के आवश्यक अंग हैं और अन्योनाभिषिक्त भी। एक ही प्राण सभी स्वरूपों में वह रहा है, एक अदृढ़ डॉर, सूक्ष्मआत्मा, एक ही जाल सबको समेटे हुये अविभंगता बनाये है।

एक ही अनु कम्पन पैदा कर रहा है, प्रहण कर रहा है और दूसरे अणुओं की रचना कर रहा है। यही अणु, गैस, तरल पदार्थ, टोस्प पदार्थ के सार तत्व के रूप में, जीवित प्राणियों के शरीर में, वस्तुओं में, परिप्रभावण कर रहे हैं और सभी के मस्तकों में सक्रिय होकर उसके विचारों, इच्छाओं और रंगलप क्षिति को प्रभावित कर रहे हैं। सभी चेतन वस्तुओं, चाहे उनकी इच्छा या न न हो एक दूसरे को प्रभावित कर रहा है, एक दूसरे के सुख दुःख में हिस्सा ले रहा है। प्रकृति में किसी एक भाग में हलचल या कुछ घटित होने पर दूसरे सभी भागों पर अवस्थनवेत्र प्रभाव पड़ता है।"

दण्ड के विरोधी आधुनिक विचारकों को यह समर्थ रहना चाहिए कि सभी धर्म, दण्ड, सजा की समाप्ति चाहें। इसके लिए वे सदाचार, पुरुष और नैतिकता की उन्नति के लिए वैज्ञानिक—आध्यात्मिक आधार प्रस्तुत करते हैं और इसे तरह तरह से प्रस्तुत करते हैं ताकि दण्ड स्वयंवर समाप्त हो जायें।

कर्मनुसार दण्ड और पुरस्कार के इस तत्त्व के बारे में कुछ बालातंत्र वाले संदेह हो सकते हैं, यथा, एक और तो ईश्वर के बारे में बताया गया है कि वह करणा सागर दयासिम्रजो और मसूफ्रुत होने के कारण पापों को क्षमा करता है तो दूसरी ओर यह कहा जाता है कि वह दुःखनों और पापों को रोकने के लिए दण्ड देता है। इस तरह के संदेह, विवाद और समस्यायें, यथायोग्य दूर की जा सकती हैं, यदि हम मस्तिष्क में ध्यान रखे कि, सभी धर्मग्रन्थ कहते हैं कि, “वह महान मुलायम न जा सकने वाला, रूक्म—ज्ञानी, सब कुछ देखने वाला न्यायाधीश और गवाह, सदैव हमारे साथ रहता है वही हमारा मित्र, रक्षक व
स्वामी है, उसी की उन्नति कर हम अपनी और सबकी उन्नति कर सकते हैं। हम जो भी कार्य केवल अपने कर्तव्य भाव से प्रेरित होकर करते हैं, उसके परिणाम स्वरूप हम पाप अथवा पुण्य के संबंध में नहीं पड़ते। यदि कोई यह सोचे कि यह अपने को पाप करने से बचा नहीं सकता तो उसे यह भी सोचना चाहिए कि यह अपने दण्ड पाने से भी नहीं बचा सकता। हमारी आत्मा या अंतःकरण से उदित हो कर जो न्याय, हमें किसी की शांतिपूर्वक करने को बाध्य करता है, वह एक महान दयामोहन है, इससे हमारी आत्मा का परिष्कार होता है। इस सबका तात्पर्य यही है कि, हमारी आत्मा के उच्च सत्ता से सभी अच्छाइयाँ उदित होती हैं और आत्मा के निम्न स्तर से सभी बुराइयाँ।"  

परलोक, अदर वर्ल्ड अथवा अन्य प्राणियों के संसार : विभिन्न धर्मों में सामान्यतः पाया जाने वाला यह चौथा सत्य है। यह नीतिक जगत, मनुष्य की वाह्य-इन्द्रियों और जागृतावस्था से सम्बंधित है। परमुत मानव-मन, किसी क्षण में, इन्द्रियों की सीमाओं और बुद्धि की शक्ति से भी आगे पहुँच कर ऐसे तथ्य का साक्षात्कार करता है या ऐसे अतीतिय जगत में पहुँच जाता है, जिसका ज्ञान इन्द्रियों अथवा चिन्तन से नहीं हो सकता था। सभी धर्म, मन की इस अदृश्य शक्ति को, तथ्य के रूप में मानते हैं। ये तथ्य ही संसार के सभी धर्मों के आधार हैं। मन की ऐसी अवस्था में, मनुष्य, मुद्रा और पुनर्जन्म की सीमाओं लांघ जाता है। मनुष्य के साथ ऐसा स्वतंत्रता में भी होता है, जब वह अतिमानवीय साधारण, परलोक, अथवा वर्ल्ड में पहुँच जाता है।  

सभी धर्म मानव को पूर्ण बनाते हैं, अतः उसकी अन्तर्निहित शक्तियों के विकास के लिये तद्नुसार शिक्षण-प्रशिक्षण की आवश्यकता है। दिशा के लम्बा पूर्वी व पश्चिमी शिक्षाविदों ने उसे ही यथार्थ शिक्षा माना है, जो मानव में अन्तर्निहित शक्तियों का अभिव्यक्त कर सके। शिक्षा का ऐसा तात्पर्य नैतिकता का मूल आधार भी है यथा, धर्मों के ये सारे तथ्य अमूर्त हैं, नीतिकशास्त्र के अध्यक्षों की भावना मूर्त नहीं। ये अमूर्त तथ्य सभी महान धर्मों में शुद्धता ऐसे क्षणों का रूप ले लेते हैं, यह रूप का तो ईश्वर कहा जाने वाला अमूर्त व्यक्तित्व होता है या नैतिक विधान के रूप में अमूर्त सत्य या समस्त प्राणियों में व्याप्त अमूर्त
सारतत्त्व का रूप। जब धर्मोपदेश किया जाता है तो उसमें भी धर्मों के अमूर्त भावों की सहायता ही हो जाती है। इस तरह सभी धर्मों का मन्तव्य यह है कि, "आदर्श ऐसकिए अमूर्त है" जो हमारे समुख सम्पुर्ण अथवा निर्गुण सत्ता, किसी विधान, या सामर्थय तत्त्व के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मानव सत्ता उस आदर्श तक अपने को उठाने का प्रयत्न करता है। प्रत्येक मानव चाहे वह किसी भी वेश-धर्म का हो या धर्म न मानने वाला हो, उसको सामने एक अपरिमित शक्ति वाला आदर्श रहता है, कोई अपरिमित सुख के आदर्श की प्राप्ति के लिये तो कोई अपरिमित आनन्द के आदर्श के निमित्त लगा हुआ है, सम्पूर्ण विश्व में जो अनेकानेक कार्य हो रहे हैं वे ऐसे आदर्शों की प्राप्ति के लिये किये जा रहे हैं। परन्तु कुछ लोगों को यह झाँस प्राप्त हो जाता है कि असीम शक्ति प्राप्ति के लिये जो संघर्ष किये जा रहे हैं, उनकी इंद्रियाँ द्वारा कोई नहीं प्राप्त कर सकता। इस तरह कुछ लोगों को इंद्रियों की अत्यन्त सीमाओं के रीत की हानि हो जाता है और ऐसे लोग इंद्रियों के माध्यम से असीम को पाने का प्रयास लग देते हैं। प्रयास का यह सहज परिलक्षण ही नैतिकता की भूमिका है। शिक्षाविदों को ऐसे त्याग हेतु ही बालकों को सहज रूप में प्रवृत्त करना होगा क्योंकि इंद्रियों कहते हैं अपने को आगे रखों, दूसरों को परे धरकल दो, यह उपयोगितावाद मानव के नैतिक सम्बन्धों की व्याख्या नहीं कर सकता।

शिक्षाविद धर्मों की यह धारणा है कि मानव में ऐसे, प्रायः मानवीय, अल्मानीय अथवा सह-मानवीय लाभों का निवास होता है। विवेश प्रायवल्लों, शिक्षण-प्रशिक्षण द्वारा, मानव में सुकृत इन शक्तियों को विकसित कर, लोक-परलोक के रहस्यों को उजागर करने के साथ-साथ उनमें नैतिकता का संचार किया जा सकता है। आधुनिक विज्ञान भी इस संदर्भ में इंगित कर, इस मानसिक-योग्यता अथवा अलौकिक-शक्ति का विस्तार करने की बात कहता है। कुछ मान्य वैज्ञानिकों ने कहा भी है कि आधुनिक विज्ञान नैतिक वस्तुओं के गुणों, आकार-प्रकार, में परिवर्तन तो कर सकता हैं परन्तु उद्देश्य से सदनिगुणों का संचालन नहीं कर सकता। कुछ मान्य वैज्ञानिकों द्वारा आत्मा या मन सम्बन्धी खोजों द्वारा, विचार संक्रमण (टेलीपेधी) को मान्य भी किया जा चुका है, योग सम्बन्धी वैज्ञानिक अनुसंधानों के
मान्यता प्राप्त संस्थान देश-विदेश में प्रशिक्षण कार्य कर रहे हैं। योग सिद्धियों, दिव्य शक्तियों, क्रियाघात, करार, रीतिश-भौतिक, भविष्य-पावर्स, परस्परसंबंध पर संदेश-सर्वर्त्र विश्वास किया जाता रहा है और ये सब उस अपरिनिम्न शक्ति को प्राप्त करने के अनुसार मान्य हैं। इससे भी आश्चर्यपूर्व यह है कि, सभी धर्माचार, स्वर्ग-नरक, लोक-मृत्यु, जनन-जननुम, ब्रह्मस-दोजख, हैवन-हेल आदि की बातें दृढ़ रूप से कहते हैं। ये बातें हमारे अन्दर और बाहर जिस तरह आत्म-परक हैं उसी भांति वस्तु परक भी, यथा, हमारे मन्त्रित में प्रसन्नता और शोकपूर्ण दृष्टियों का खिंच जाना और बाहर जाने पर सुन्दर बाग-बगियों, मनोहारी दृश्य तथा कारागार या अन्य प्रकार की यातायात दिखाना।

देव, उपदेव, गण, पार्षद, सिद्धराण, विद्धाधर, अच्छार्य, गद्धार्य, यक्ष-राक्षस, फकिश्ता-मालायक, परियों और जनन, अमेसा-स्पेंटा और यज्ञ, ऐंजिल्स और डेविल्स आदि की धारणायें भी सभी धर्मों में समानत्व रूप से पाई जाती हैं। इन अन्त मानवीय रूपों या आत्माओं की पूजा-प्रार्थना की जाती है। इस हेतु सभी धर्मों में, विभिन्न ऐसे विद्व-विधायों, संस्कारों आदि का उल्लेख है, जिसके आधारस्तू तत्त्व, सबसे प्रम करने वाले, सबसे उदारता बरतने और सहानुभूति रखने वाले हैं और जो साधक के लिए, मानसिक, शारीरिक और नैतिक रूप से पवित्र होना आवश्यक बताते हैं।

सूक्ष्म संत जागी : ने विराट शरीर से सूक्ष्म शरीर के विच्छेद को व्यक्त करते हुए कहा है, “उस प्रेममय ने सबको, प्रत्यक्ष व्यक्ति के हाथों में सीप रखा है, फिर भी उसे अलग समझने के कारण युवा शम्श से मर जाना चाहिए।” एक ज्यू मुसलमान, एक इसाई, राह चलते बजाए चले जा रहे थे। ज्यू बोला, “मेरी आत्मा रात को कही घूमने चली गयी, जहाँ में एक पहाड़ पर मोजेज के पीछे-पीछे चला जा रहा था, जहाँ हम दोनों तेज प्रकाश में विलोम हो गये।” इसाई बोला, “क्राइस्ट मेरे सामने प्रकट हुये थे।” अंत में मुसलमान बोला, “मेरे प्यारे दोस्तों, मुझे मेरे प्यारे शेहशाह पेंगमंड्र के दर्शन हुये।”

साक्षरता अथवा अनुरूपताओं का नियम :-ज्ञान मार्ग के अन्तर्गत ही, सभी धर्मों का यह पांचवा प्रमुख सत्य या नियम हैं। यह नियम वस्तुतः आगमन पद्धति पर
आधारित है, जिसमें सत्त्वनाट्य, सत्यत्व, या अनुरूपता के स्थल उदाहरणों द्वारा सूक्ष्म निकाश्चिन निकाले जाते हैं, सभी विज्ञानों का भी यही आधार है। ज्ञानों विज्ञानों का यही दायित्व बनता है कि वे ज्ञान प्राप्त करने व ज्ञान प्रदान करने के लिए सभी पूर्वाग्रहों को छोड़कर प्राकृतिक तथ्यों का आगमनात्मक विश्लेषण करवायें। जिस तरह का यह, Microcosm, आलम-ई-सभी अर्थ श्लोक विराट है, उसी के सदृश, Macrocosm, आलम-ई-कयार अर्थव्यक्तित्व महाविराट है। जैसा यह पृथ्वी का मानव है वैसा ही घर्ष का मानव है-यह कैसे है?

इसकी व्याख्या, हीण, क्रिष्णयन, इस्लाम तथा वैदिक आदि धर्मों के रहस्यवाद द्वारा की गई है। संस्कृत में, जो कुछ एक वस्तु में है, वहीं सबमें है, व्यक्तित्व और सार्थमनकता एक ही है। वैज्ञानिक भी यही कहते हैं कि जो अनु है। वहीं सौर मण्डल (सोलर सिस्टम) है। विभिन्न धर्म भी यही कहते हैं,

वैदिक (भागवत पुराण) : "जिसे एक मानव प्राणी के अवयव, अंग तथा हिस्से होते हैं वैसे ही समस्त प्रहर्मण्ड में व्यापक विराट पृथ्वि के भी है।" जूढ़ावाद (टालमुड़)¹ : "जिस तरह आलम शरीर को भरती है उसी तरह इश्वर भी संसार को। जिस तरह आलम शरीर को भरती है वैसे ही इश्वर संसार को सहन करता है। जिसे आलम सब कुछ देखती है परन्तु स्वयं को नहीं उसी तरह इश्वर सब कुछ देखता है लेकिन देखा हुआ नहीं है।" कुरआन (सू. 5, आ. 32) : "जिसने किसी की जान बचायी, उसने मानो सम्पूर्ण मानव जाति को जीवन दान दिया।"

यह समता, सदृशता, समानरूपता अथवा करेरसपांडेय प्रकृति का नियम है। इसका एक ही कारण है, इश्वर-मानव और प्रकृति की साथीता एकता। जो एक है वही सब हैं, जो किसी समय हैं वही हमेशा हैं, जो यहाँ हैं वही सब जगह हैं, क्योंकि वही एक आलम सबमें, सदैव और सर्वत्र विद्यमान है। वैदिक धर्म में इस आधारात्मिक सत्य को, "सर्वम, सर्वत्र, सर्वदा" कहा गया है। तत्स्वरूप में इसे, इन्द्रियार-ईकुल-फिल-कुल (सबकी सब में अन्तर्निहितता) कहा गया है। वाइठिल में, "उसकी पूर्णता सर्वस्व में समायी है।"

¹. जे. एबेलसन, जेविस माइकलिंग, 1913, पृ. 155
विज्ञान भी कहता है कि, प्रत्येक बीच जीवाणु, जीव और पौधे में असीमित गुणन—बुद्धि क्षमता विद्यमान है। प्रत्येक अणु में होने वाले कम्पन से अन्य सभी अपरिमित अणु निरंतर प्रभावित हो रहे हैं। सभी दिशाओं से अत्यन्त दूरी वाले तरारे, नक्षत्रों की प्रकाश किरणों द्वारा, अन्तरिक्ष के प्रत्येक बिन्दु पर सर्वदा अनगिनत प्रकाश—चित्र भेजे जा रहे हैं। अनन्त दूषण—विषयों और आवाजों से यह अनन्त—आकाश (स्पेस) निरंतर भर रहा है, जबकि यह तो ऐसे किसी उपकरण की जिनसे इन्हें पकड़ा जा सके और एक अणु मात्र को जान लेने पर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त इन सब घटनाओं को जाना जा सकता है।

अतः शिक्षाविदों को समाता के इस सत्य अथवा नियम की समझ रखना अधिक आवश्यक और उपयोगी है। जिसका सार है कि एकमात्र सत्ता ही है तथा यह एक सत्ता ही विभिन्न महत्वपूर्ण सत्ताओं के बीच होकर दिखाई पड़ने के कारण, पृथ्वी, रचना, नर्क, ये धर्म, ये धर्म, यह ईश्वर, यह अल्लाह, ईसा, कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद, जियोहास, मानव, दैत्य या यह सब कहते हैं जो हमें ध्यान देता है। यह कहाँ ठीक नहीं है कि मनुष्य के भीतर एक आत्मा है, यद्यपि समझाने के लिए हमें इस प्रकार मान लेना पड़ता है—किन्तु सब ही यही एक सर्वव्यापी आत्मा, प्राण या साउल आदि है। चरम सिद्धांत यह है कि “हम वही एक सत्ता हैं।”

समाता का यह चरम सिद्धांत नैतिकता की दृढ़ नींव रखने के लिये बालकों में ल्याग की सहज भावना भर कर, उनमें विश्वविद्यालय, सदभावना, शार्मिति और समानता जैसे सदनुभवों की, यज्ञ—यज्ञ—सर्वव्यापी कर सकता है। उन्हें देहगत सुख के आर्थिक की पश्चातायुक्त अनुभव से उठाकर, ज्ञान के सर्वव्यापी सुख में प्रतिष्ठित कर आत्मान्तर में विश्वास कर सकता है और यथार्थ सुख के इस एक मात्र उपकरण आत्मा का, कहीं भी, कहीं भी, अभाव नहीं है।

सादृश्यता, अथवा समाता के इस नियम को, आगमन श्रद्धा द्वारा स्पष्ट करने के लिये, प्राथमिक कक्षाओं में, उपयोग में नहीं लाया जा सकता, क्योंकि इस उत्तर के बालकों में तय है और सूचन विचार करने की योग्यता नहीं होती। माध्यमिक और उच्च कक्षाओं में इसका प्रयोग किया जा सकता है। अपने दैनिक जीवन में हम समस्याओं को इसी विधि से
सुझाव हैं परन्तु आरोप भी है कि हम उन्हें कभी इन नामों से नहीं जाना ले।

आध्यात्मिक सामाजिक की एक दीर्घकालीन परम्परा :— यह एक अन्य तत्त्व है जिस पर सभी धर्म संयुक्त रूप से सहमत हैं। जिस समय विकासवाद की श्रेष्ठता में निम्न प्रगति का प्राप्त उच्च प्रकृति का हो जाता है उसी प्रकार व्यक्ति का व्यक्ति और भी उच्च उठ जाता है। उच्चवादों के प्राप्त ऐसी आत्माओं अपने प्रभाव द्वारा, आध्यात्मिक अथवा सदाचार के सामाजिक को स्थापित करती हैं, अन्य जाति का संस्कार करती हैं। उन अपने प्रेम वंधन में बौद्ध कर उनकी शक्ति करती हैं, उनके जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन करती हैं और उन्हें एक सर्वसंध मार्ग की ओर ले चलती हैं। सभी धर्म में मानवता के इन संस्कृतियों अथवा शिक्षकों को भिन्न नामों से जाना जाता है:

वैदिक धर्म, में इने उनकी क्षमतानुसार, अध्यात्म, विमृति, मनु, ऋषि, मुनि आदि कहा जाता है। बौद्ध धर्म, में बोधिसत्तव, बुद्ध एवम् तथागत। जैन पंथ, में तीर्थंकर, सिद्धगत, मुनिगण, इस्लाम कुशी, गौतम, वज्र, अवशेष, बुद्ध, अर्धचार, वैदिक, ब्राह्मण, नवीन, रूपल आदि। ईसाई धर्म, सन्नाए गाड़, मसीहा, धौम, प्रासेट, सेन। जूडवाद, जैसेस, पेट्रीआर्क। जोसिस्ट्रियन, रेयोवर्ट्स। इनका प्रयुक्त कार्य संयम पर सनातन सत्य की पुनर्बाध्या करना होता है। विभिन्न धर्म, अपना आध्यात्मिक—सामाजिक सम्बन्धी मत, निम्नवत प्रक्षण करते हैं:

वैदिक धर्म (गीता), 'हे अर्जुन जब जब धर्म की हानि होती है, तब तब मैं अवतार लेता हूँ। सज्जनों की क्षति, दुर्जनों के विनाश और धर्म की पुनर्स्थापना के लिये मैं युग—युग में पैदा होता हूँ।' कुरान (सू. 16 आ. 38) "निसनदेह ! मने दुनिया के हर कोम एक पैगम्बर भेजा है, जिसका उपदेश था कि इश्वर की उपस्थिति करे और दुष्ट वासनाओं (पारस्यक प्रवृतियों) के बुलाये में न आओ अर्थात् उनका मूलाधार कर दो।" कुरान (सू. 43 आ. 5) : "और कितने ही नवी जिन इस नामे हैंजिन हमने पहले के लोगों (प्रारम्भिक काल की कौम) में भेजा।" गौतम बुद्ध (सेवन बास्केट), "उचित समय पर एक दूसरे बुद्ध का उदय होगा। उसे लोग मैत्रेय के नाम से जानिये (मैत्रेय = दयालु प्रकृति का), प्रत्येक बुद्ध की मृत्यु के
परचाल उसका धर्म कुछ समय तक फलता पूर्वता है परचाल धुंधला पड़ जाता है और अन्त में उस समय तक के लिए पूर्वता पुला दिया जाता है, जब तक नये बुद्ध का अवतरण न हो जाये, जो पुनः धर्म के विस्तृत सत्यों की शिक्षा दे ।’’ बाईबिल, ”ईश्वर ने स्वयं को किसी भी देश में प्रत्यक्ष करने में अपना बचाया नहीं किया है।" जोसोस्ट्रायन, (जेन्ड-आबेस्टाइं), "प्रत्येक युग में एक धार्मिक मार्ग-दर्शन प्राप्त होता है जो लोगों की सहायता और सुखा करता है, ऐसा करने में वह जयदा की आज्ञा का पालन करता है।" हर्दीस (वेलार्नी द्वारा संकलित), "एक नबी-पैगम्बर हिंदु में रहा और शिक्षा दी, उसका श्याम वर्ण था, "काहिन" (कान्हा-कन्हैया का अप्रक्षण) उसका नाम था।”

इस आध्यात्मिक साक्षात्य या धर्म का पतन क्यों होता है? सभी देशों के इतिहासों में इसका एक ही उत्तर है, धर्म को जब जब पन्थों, पुराणहितों, पादरियों, मौलिकों, राजनीतिक और राज नेताओं ने अपने स्वार्थ सिद्ध का साधन बनाया तो तरह तरह के पाखरू, धर्मों-साम्प्रदायिकता, संघर्ष और युद्धों का जन्म हुआ। धर्म आपस में नहीं टकराते, लोगों के स्वार्थ और आह्वान जब टकराते हैं तो धर्म की आड़ बनाकर धर्मों-साम्प्रदायिकता संघर्ष और युद्धों का जन्म हुआ। धर्म आपस में नहीं टकराते, लोगों के स्वार्थ और आह्वान जब टकराते हैं तो धर्म की आड़ बनाकर धर्मों-साम्प्रदायिकता में जन्म हुआ। धर्म आपस में नहीं टकराते, लोगों के स्वार्थ और आह्वान जब टकराते हैं तो धर्म की आड़ बनाकर धर्मों-साम्प्रदायिकता में जन्म हुआ।

इसलाम धर्म के मुहम्मद सल्ल के एक हाथ में तलवार और दूसरे में बुरुआन रहता था। कितनु कुरान का पूर्ण अध्ययन करने के परचाल यही अवस्था चलता है कि उसमें हिंदू को नहीं अवस्था यही है। कितनु तेलीन अरब समाज की दुर्दशा का निष्क्रिय भाव से अध्ययन करने पर इन युद्धों का आचरण और अनिवार्यता सिद्ध होती है। पं. सुन्दर लाल की पुस्तक ‘हजारत मुहम्मद और इस्लाम’ में लिखा है कि, किन्तु प्रकार जहाँ कहीं मुहम्मद सल्ल जाते वहाँ उनकी कितने प्रकार की दुर्दशाओं की जाती। एक बार तो उन्हें यदि अबुबक्र ने बचाया न होता तो नमाज पढ़ते समय ही उनकी हत्या कर दी जाती। अतः उन्हें धर्म तथा अपने चीज़तन्त्र अनुयायियों की रक्षा करवाया उदाहरण पढ़ी थी। इस्लाम जो है ही इसमे का पर्याप्ताधीन।
सभी धर्मों की आधारभूत शिक्षाओं में कोई मतभेद नहीं रहता है। ये सदैव एक सी रहती हैं। परन्तु जिस शीर्ष के प्रेम में इन्हें मद्द जाता है वह काल की गर्त में घुंघरा पड़कर प्रभावी हो जाता है। फिर, जब यथार्थ आध्यात्मिक शास्त्रों को बड़ा मान सम्मान प्राप्त होता है तो उनके जीवन के पश्चात बहुत से पावहिनी वैसे ही आध्यात्मिक शास्त्र बनने को पावहिनी करते हैं और तरह तरह के वाह्यावकार, पावहिनी, छल-कपट फैलाते हैं। आधुनिक भारत में 200 वर्षों की धर्म-विधीन शिक्षा से भी यथार्थ धर्म सिद्धान्त घुंघरे पड़ गये हैं और इस अज्ञानता का लाभ चतुर राजनीतिक और वाह्यावकार पण्ड, पुरोहित उठा रहे हैं।

इन आध्यात्मिक शिक्षाओं का पुनः उद्दार्य या साम्राज्य स्थापन, समय समय पर उत्पन्न होने वाले महात्माओं या आध्यात्मिक शास्त्रों द्वारा ही सम्पन्न होता है। आध्यात्मिक साम्राज्य के उद्वेग-पतन का यह क्रम चलता ही रहता है। क्रम-विकासवादी श्रृंखला जितना ही ऊपर उठती हैं उतना ही नीचे मिलती है, जितना ऊपर फैली जाती हैं उतना ही नीचे मिलती है। यही राम-राज्य, खुदा-राज्य अथवा सक्तिक आफ गाड आन अर्थ है।

जीवन का लक्ष्य, स्वात्मा को सबमें अनुभव करना :- सभी धर्म कहते हैं, स्वयं को सबमें मानो। अपनी भूली हुई असीमता को याद कर आत्मा, परमात्मा के पास वापस चली आती हैं जैसे घूमने वाला घर लौटे। जीवन का उच्चतम बिन्दु, उद्देश्य, लक्ष्य, परम, पुरुषत्व, मकर्षद-इ-जिन्दगी, आदि दोहरे हैं, दो स्वाच्छ कल्याण हैं, पहला है, अन्युदय, नमात-इ-दुनियायी अर्थात् इस सांसारिक जीवन की सफलता, सम्पन्नता, इस दुनिया की वस्तुओं का उत्पभोग, धर्म, अर्थ, काम, दयालुता, दौलत और लज्जत-उद-दुनिया अथवा नियमों के अनुसार इंद्रियों के साथ धन सम्पत्ति का भोग। दूसरा स्वाच्छ कल्याण, अन्तिम लक्ष्य, पीचा, नजात, साधनशील, है। अर्थात्, अपनी दुखी में, स्वतंत्रता, निर्भरता, परमानन्द, हज-इ-आला, लज्जत-उल-लाहिया, जिसमें बढ़ कर कोई आनन्द नहीं है, इस्लाम से मिल जाना, स्वयं इस्लाम हो जाना।

आन्तरिक रूप से प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य यही होता है कि जीवन के अन्त में या जीवन रहते वह अपनी मौत से प्रभावित कर ले या उससे संयुक्त रहे, जिससे वह विकल्प
हो गया है। इसका तात्पर्य यही है कि, सभी पृथक कही जाने वाली आत्मायें एक सर्वोच्च आत्मा का ही अंश है और सम्पूर्ण प्रभावण्ड इस सर्वोच्च आत्मा के अंतिम और कुछ नहीं। इस तरह का मिलन सब प्रकार से अभावित है। देव-संबंध यह संयोग या स्वतंत्रता प्रत्येक पृथक कही जाने वाली आत्मा को प्राप्त होती है यथा:

वैदिक और जैन धर्म में, इसे मुक्ति कहा गया है। इसलिए, नजाता, फला-फला-इलाह कहते हैं, इस दूसरे शब्द का तात्पर्य है, अपने आप को अलग आनंद के साथ खुदा में बुझा देना या लोप कर देना। इस्लाम का ही एक अन्य शब्द, लज्जत-उल-इलाहिया, वैदिक शब्द प्रभावण्ड के तुल्य है। ज्यूस लोग, इस अवस्था को "पैलेस आफ लव" कहते हैं। नासिक लोग, "प्लेन आफ इंटरनल लाइफ" कहते हैं और क्रिकेट, "किंगडम आफ हैवेन" कहते हैं।

परमानन्द की इस स्थिति में परायापन, गैरियत अथवा इतरता शेर नहीं रह जाती, अर्थात् गैरियत और इतरता में ही सारे अनैतिक आचरण, दुख, कठोर, कोष्ठ हैं। "सब में हूँ।" पुराण बहा हो जाता है, जीवात्मा परमात्मा हो उठती है, अंश पूर्ण हो जाता है, खुदी खुदा बन जाता है, बूढ़ समुद्र हो उठती है। मानव उस समय इश्वर हो जाता है, जब वह ऐसे ही बिंदुओं की, मात्राओं की, पहचान कर लेता है, जो दो कभी ये ही नहीं। विभिन्न धर्मग्रन्थों में इस सर्वांगता का विविध भौतिक वर्णन किया गया है, परंतु सबका तात्पर्य एक ही है, "अपने को सब में, और सबको अपने में प्रत्यक्ष करना और तदनुसन्त नैतिक व्यवहार करना।" यथा:

वैदिक धर्म (ऋग्वेद, 8.44.23): "हे अनिं अन्तर में प्रज्वलित हो, प्रकाश करो और मार्ग दिखाओ। ऐसा निर्देश करो कि में तुम हो जाओ और तू में।" उपनिषद्: "जिस भाति मानव शरीर से, नींद और केश उगलते हैं उसी भाति इस शाक्ति आत्मा से प्रभावण्ड उगलता है।" सूरी: "मैं तुझसे जुड़ा नहीं और न तू मुझसे। मैं शरीर हूँ और तुम मेरी आत्मा।" जोरोस्ट्रॉयन (गाथा 28.11): "ज्यूस की शक्ति और विद्वानों के विस्तार से हम उसके पास और उस स्थिति को लौट सकेंगे जो हमारे जीवन के प्रारंभ में थी।" ज्यूस (जोहर, 171)
II. 218 B.) : “सभी चीजें जिनसे यह संसार बना हुआ है, आत्मायें और शरीर, अपने उदारम स्थल को, अपनी प्रधानता को लोटेगी।” कुरान : "अल्लाह से हम आये हैं, उसी के लिये हम हैं और यथार्थत : उसी के पास हमें लौटना है।" बाइबिल : "निर्दोष बनो, जिस तरह तुझे पिता स्वर्ग में निर्दोष है, और तुम सत्य को जान जाओगे और यह सत्य तुम्हें मुक्त कर देगा (सभी भयों से), तुम लोग ईश्वर हो।"

इस मुक्तावस्था को प्राप्त करने, पूर्णावस्था में पहुँचने, व्यक्तिवादिता और सार्वभौमिकता की पहचान होने में, आत्म या मन को तीन अवस्थाओं को प्राप्त करना होता है। ज्ञान—मार्ग के वृत्तिकोण से सभी धर्मों में, इन अवस्थाओं से सम्बन्धित तीन प्रमुख विचार रखे गये हैं,

(i) Dualism, (ii) Pantheism, (iii) Non-Dualism (i) हैत. (ii) विशिष्टात्मत. (iii) अद्वैत (i) इजायिय. (ii) तुसूदियह. (iii) यूसूदियह। विभिन्न धर्मग्रन्थों में उल्लिखित ये तीन अवस्थायें परस्पर विरोधी नहीं हैं। जबकि, विभिन्न धर्म—सम्राज्य के लोग प्राय: अतिवादी होकर किसी एक ही अवस्था पर जोर देने लगते हैं अथवा उस अवस्था को पृथक वाद बनाकर, व्याख्या के संघर्ष पैदा करते हैं। यथार्थत: ये तीनों क्रमिक अवस्थायें हैं और जब ज्ञानी अद्वैत अवस्था पर पहुँचता है तो ये सभी अवस्थायें एक दूसरे से संयुक्त और सहायक दिखती हैं। यथा, अद्वैतमत, हैटमत की ही रक्षा और पूर्ति करता है और साथ ही ब्रह्मनाशयपन मानव जाति की परमोच्च गति के साथ सामर्थ्य रखकर अपने सिद्धांत का प्रतिपादन भी करता है, जो मानव वैज्ञानिक के बाद भी अपने व्यक्तित्व की रक्षा के इत्यादि होते हैं, मंगलान से स्वतंत्र रहना चाहते हैं, उनके लिये हैत नर मध्य मार्ग है, निर्वाण है।

सत्यत: हैत, विशिष्टात्मत और अद्वैत, अत्याचार सुन्दर दार्शनिक पारिस्थितिक शब्द हो सकते हैं किन्तु सम्पूर्ण अनुमूल्य के समय हम एक समय में ही सत्य और मिथ्या कभी नहीं देख सकते। यदि रस्सी देखकर साँप का भ्रम होता है तो उस सामय साँप या रस्सी, एक ही वस्तु दिखाई पड़ेगी। सभी धर्मों के ज्ञान पक्ष द्वारा समान रूप से निर्धारित जीवनलक्ष्य, वस्तुता में सबको और सबमें स्वतन्त्र को अनुभव करने के सन्दर्भ में, धर्मों की यथार्थ शिखा द्वारा छात्रों में उत्पन्न जिज्ञासाओं की शान्ति के लिये, उन्हें इस सत्य की प्रतीति कराई जा सकती है।
कि जिस सुख—भोगों के लिए संसार, तरह तरह के संघर्ष कर रहा है, वह समय स्थान और परिस्थितिनुसार व्यतीत हो जायेगा और शेष कुछ नहीं रहेगा। इसी तरह दुख कट और दुराइयों आयेंगे, वह भी समाप्त हो जायेंगे। अतः केवल तरह तरह के इतनी सुखों के पीछे पड़े रहना, पशुवत जीवन व्यतीत करना है। वाह्य जगत के इन व्यापारों का पर्यवेक्षण करना सहज है परन्तु अन्तर्जगत के व्यापारों (सम्पूर्ण चेतना—अचेतन जगत की सार्वभूत एकता), जो सभी धर्मों का विवादहीन ज्ञान है, की अनुमूल्य करने का क्षेत्र उपाय एकाग्रता है। मन की एकाग्रता, क्योंकि सभी धर्म भ्रमणांक माननिशित के माननिक भाग के विश्लेषण ही तो हैं। वैज्ञानिक भी मन को भौतिक पदार्थों पर केन्द्रित कर विश्लेषण और प्रयोग करता है। अतः धर्मों और उन के सार्वभूत समान सत्यों की शिक्षा के लिए, छात्रों का जितना मनोनिवेश कर जायेगा उतना ही स्पष्ट रूप से ये धर्म को धारण कर सकेंगे, परस्पर एकता के सूत्र में बंध सकेंगे। मानव मन की शाक्ति की कोई सीमा नहीं है, वह जितना ही एकाग्र होता है उतना ही उसकी शाक्ति एक लक्ष्य पर आती है।

सर्वज्ञान होने की स्थिति को ही, शाश्वत—सुख, शाश्वत, मोक्ष, निम्नायु, साल्यवैत्य, निजात या आत्मात्म सर्व गृहत्तेज बनते हों। धर्मनिरपेक्ष ध्यान योग साधना, नन की एकाग्रता का साधन है। यह साधन प्रथमतः जिज्ञासा उत्पन्न कर, नैतिकतापूर्ण बनने की मूलसूत्र शर्त रखती है तथा इस बात की स्पष्टता और आत्मासंग देता है कि किसी का धर्म चाहें जो हो, चाहें वह आत्मिक हो या नास्तिक, मुसलमान हो या बौद्ध, ईसाई हो उसका मानव होना ही पर्याप्त है। प्रत्येक मनुष्य में, धर्म तत्त्व और असीम ज्ञान भी है और उसका अनुसंधान करने की शक्ति और अधिकार भी है। सभी धर्मों में जीवन के इस सर्वार्थ उद्देश्य, “आत्मा” में ही सर्वोच्च के दरवार” की शिक्षा के साथ साथ, यह स्वतंत्रता भी दी गई है कि इसके पूर्वान्तव इस दुनियाँवीरसों का मोह निरंजन मिलानों तथा ध्यान व ज्ञान के अनुरूप कर सकता है, अर्थात् अतिविद्यको जीवन (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) यही वह ज्ञान मार्ग है जिस हेतु छात्रों को प्रेरण करने की आवश्यता है। धर्मनिरपेक्षता और नैतिकता का यथार्थ, सहज और बाध्यरहित मार्ग है।

[173]
[3] सभी धर्मों के भक्ति मार्ग अथवा धर्मों का भाव पक्ष

यद्यपि भक्ति मार्ग यथार्थ में कोई पृथक मार्ग नहीं है फिर भी कुछ विशिष्ट उद्देश्यों से ऐसा कहते हैं। मानव के जीवन में ज्ञान, कामना (भक्ति प्रार्थना) और कर्म तीनों अविभाज्य हैं, इनमें अद्वित समन्वय है। शिक्षा के क्षेत्र में यह तथ्य हृदयंगम करने की आवश्यकता है कि यदि यथार्थ ज्ञान, मस्तिष्क है तो यथार्थ प्रेम या भक्ति हृदय और यथार्थ कर्म, हाथ पैर अथवा शरीर। अतः मस्तिष्क, हृदय और शरीर, तीनों को शिविर-प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है।

इसके-मिजाजी, विश्वानन्द, मानव प्रेम आदि और कुछ नहीं, उस इसके-हकीकी, ब्रह्मानन्द, अथवा महत्त्व-भक्ति का धोखा सा प्रतिष्ठित मात्र है। उच्च संबंधों, भावनाओं आदि के बिना यह विश्वासपूर्वक ज्ञान-विज्ञान बजर ही जान पड़ेगा। सजीव आत्मा या जिन्नादिली के बिना कोई भी सुदर्शन शरीर मृत्युप्राय ही विदेहग। किसी शायर ने ठीक ही कहा है,

"आह दुनिया दिल समझती है जिसे यह दिल नहीं।

पहलुए इसौं में इक हंगामें खामोश है।"

सम्पूर्णता की पूर्ति में मात्र ज्ञान के द्वारा अर्थ-पूर्ति ही हो पाती है, परंतु जब ज्ञान का विवाह प्रेम से होता है, केवल तभी, इन दोनों को सदृश रूपी पुजू की प्राप्ति होती है। विज्ञान और विश्वनेत्र का योग ही यथार्थ ज्ञान है। ज्ञान, परेशानिता और लोगों की सहायता के कर्म ही धर्मपरायणता है। अतः हमें धर्मपरायणता के सच्चे मार्ग पर ही चलना चाहिये, धर्म और सुख तो इस मार्ग पर हस्तक्षेपावलत प्रपात होगा। नीति-विश्वास हो, विधि विश्वास हो या निष्ठा, उम्मीद हो या नवाही, मामूलत हो या ममनुषात, व्यवहारिक रूप में ये सब एक ही बातें हैं।

पांच प्रधान गुण, आचरण या अनुशासन : सामाजिक धर्म (मानवीय कर्तव्य) के प्रगति मनु को, प्रायः विधि का प्रथम रचयिता कहा जाता है। मानवता के लिये उन्होंने जिन नियमों
का निधरण किया है, योग-दर्शन में उन्हें ‘यम’ कहा गया है। बुद्ध ने उन्हें पंचशील कहा। मौजेज के तेन कमामेन्द्र में भी इनमें से पांच है, जिनका उपदेश और जिनकी पुष्टि बाद में क्राइस्ट ने भी की। कुरान में भी इनका उल्लेख है यद्यपि कुरान में इसका उल्लेख किसी एक ही स्थान में नहीं हुआ है। विभिन्न धर्मों का कोई भी उपासना मार्ग, ज्ञान, भक्ति अथवा कर्म कोई भी हो, सबमें नैतिक आचरण पर प्रथम जोर दिया गया है।

वैदिक धर्म (गुरु) : “आहिस्ता, सत्य, असत्य, शौच और इन्द्रिय निग्रह, ये सब संकेत में मानव के कर्त्तव्य (धर्म) हैं।” “बौद्ध पंथ : “हत्या न करने, चौरी न करने, व्यावसायिक न करने, असत्य न बोलने, नामाज न करने का धर्मदेश ग्रहण करो।” जैन पंथ : में पांच प्रकार के कार्यों से विरल रहने को कहा गया है, किसी का जीवन लेना, असत्य बोलना, अनिच्छापूर्वक दी गयी किसी वस्तु से, अवैध सम्बन्ध, जरूरत से अधिक कोई वस्तु।” मौजेज : “हत्या न करो, झूठी गवाही न दो, चौरी न करो, व्यावसायिक न करो, अपने पड़ोसी की किसी वस्तु की अनिलाप्ता न करो।” कुरान : “हत्या न करो, झूठे शब्दों से परे रहो, स्त्री या पुरुष जो भी चौरी करेगा अपने हाथों को गंवा देगा, जो अवैध सम्बन्धों से परे रहते हैं और अपने गुप्तांगों पर नियंत्रण रखते हैं, उन्हें ही जीत हासिल होगी।” बाइबिल : “ईश्वर से भय खाओ और उसके आदेशों का पालन करो, यही मानव का सम्पूर्ण कर्त्तव्य है।”

सामान्य रूप से उपरुप्त कर्त्तव्य, सभी धर्मों में गृहस्थों अथवा जनसाधारण के लिये निर्देश किये गये हैं। इसके साथ ही सबसे, सन्यासी, निग्रुओं फकीरों, योगियों वैरागियों और सालिकों आदि जिन्होंने सांसारिक जीवन से विरक्त हो ले हैं और जो आध्यात्म द्वारा मानवता में एकता और सुख शान्ति लाना चाहते हैं, के लिये कुछ अधिक कठोर यम-नियम, जोहद-लकास्तुफ, इबादत-रियाजजत, आविर्तनन्द-परस्कामेन्सेस, हिंदोस्तान-डिसिल्लिन निर्देश किये गये हैं।

इन निषेधात्त तथा सकारात्मक कर्त्तव्यों-आदेशों का उद्देश्य है कि साधारण मानव
में शक्ति अथवा—चेतना की जो धारा, बहिष्मुखी हो शारीरिक अंगों में बह रही है, उसका बहाय भीतर की ओर करना। वैशाजी और त्याग द्वारा शक्ति अथवा चेतना की यह धारा अन्तःमुखी हो जाने पर आत्मा या मन की परमीतिक शक्तियां जागृत हो उठती है और एक ऐसे उच्चतम सामाज्य का मार्ग प्रशासन हो जाता है जहाँ पहुंच कर शक्ति के मन में इस संसार के तमाम सुख—वैभव तुच्च मालूम पड़ते हैं। सभी प्रकार के स्वास्थ्य और लोबुदाहिनों को त्याग देने की स्वामने इत्यादि होती है। सभी धर्मों में आत्मा या मन की ऐसी सर्वच्छावस्था के वृतान्त हैं, जहाँ अनित्य पूर्णता, परम सत्य प्राप्त होता है,

वैदिक धर्म, पारंजपली ने योगसूत्र में यम—नियम निर्देशक किये हैं, अहिंसा, सत्य, असत्य, प्रहमचर्य, अपरिग्रह, यम हैं। सौंत, सत्तोष, तप, स्वाध्याय, इश्वर निवाण, नियम है।

बाईबिल, ईसा से प्रयासकर्ता ने जब जोर देकर पूछा, "और कौन सा अच्छा कार्य मैं करूँ, जिससे मुझे अनात जीवन की प्राप्ति हो।" इस पर ईसा ने, आगे योग (पूरी सम्पत्ति का परिशोध) को भी जोड़ दिया, जिसको केन्द्र में, मेरे—पन का अहम अलगाववादी होता है, जो कि योग में बाधक है। "अगर तुम पूर्ण होना चाहो, तो तुम्हारे पास जो भी हो उसे गरीबों को दे दो और मेरे साथ आ जाओ।" आगे ईसा ने अन्य लोगों को अभियान देने का आदेश भी दिया, मनसा—वाचा—कर्मणा, पापों से दूर रहने को कहा और सिद्धजनन्त्र प्राप्त करने पर जोर दिया।" कुमाऊँ : ने सांसारिक जीवन से विरक्ति पड़ने वाले ऐसे यथार्थ जिज्ञासुओं के लिये, मानवता के अन्य उच्च शिक्षाकों की भांति फँक और सकून, सम्पत्ति का पूर्ण रूपसे त्याग, पूर्ण संतोष उपजाने और अपरिग्रह की शिक्षायें दी है। हदीस : में कहा गया है,

"धमण्ड को में अत्यन्त निर्विन्नता मानता हूँ।"

ध्यान देने योग बात यह है कि सभी पांच यमों या शीलों का सार यही है कि प्रत्येक प्रकार की यथार्थतयादिता और अपने को अन्यों से पृथक मानने की अहेंता का पूर्ण उच्चस्थल करना चाहिए। यद्यपि गृहस्थ और सम्प्रदायी जीवन के कर्मयों में बड़ा अन्तर हैं फिर भी दोनों में त्याग सर्वप्रथम हैं। इसकी श्रेष्ठी और परिमाण में भले ही अन्तर हो। यह त्याग ही नैतिकता की भित्ति है। सभी धर्मों या योग में यह त्याग आवश्यक बताया गया है। भक्ति
मार्ग में भक्त का त्याग और प्रेम बड़ा सहज और स्वामाविक होता है। ऐसे त्याग और प्रेम का विकृत सुप हम प्रतिदिन अपने चारों ओर देखते हैं, यथा, स्त्री पुरुषों द्वारा बदल-बदल कर अन्य स्त्री पुरुषों के सिये त्याग और प्रेम करना और पहले वाले को विस्मृत कर देना। यही शिष्याविदों का दायित्व है कि वे मानव प्रेम और त्याग के, गाँव अध्याय पढ़ों के संकुचित दायरे के विस्मृत कर उसे विश्व प्रेम, सम्पूर्ण मानवता के प्रेम में बदल दें। मानव में प्रेम की यह अद्भुत शक्ति अन्तर्रा मान्य में निहित होती है। मानव जिन्स ही अशिक्षित-अशााँगी होती है, उत्तर टक यह पतझड़ इन्द्रियों में ही सुख का अनुभव करता है और जिन्स ही उसे तदनुसार शिक्षित किया जोभा, उसे स्वभाव व वालों में आनंद मिलने लगेगा। इसी तरह जब मनुष्य बुद्धि और ननोवृत्ति के भी अलौकिक हो जाता है, आध्यात्मिकता, नक्त अथवा ईश्वरानुभूति के क्षेत्र में विचारता है, तो वह उसे जो आनंद प्राप्त होगा, उसकी तुलना में इतिहास-जन्म सुख ही नहीं बुद्धि से मिलने वाले सुख भी तुलच श्रावत होंगे। भक्ति के लिए जिस त्याग, वैशार्ग की आवश्यकता होती है, शिष्या द्वारा उसे प्राप्त कराने के लिए किसी का नाश करने की आवश्यकता नहीं। यह वैशार्ग या त्याग तो स्वभावतः ही आ जाता है जैसे तेज प्रकाश के सामने मंद प्रकाश स्वभाव ही धूपलता हो जाता है, सूर्य के प्रकट होने से चन्द्रमा स्वभाव ही निषिद्ध हो जाता है। यही ईश्वर भक्ति या प्रेम बढ़ते हुए जब पराभव व का रूप ले लेती है तब न क धर्म-धर्मों का प्रमोशन रह जाता है और न मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर, धर्म, सम्प्रदाय अध्याय देश, राज्य का। यह भक्ति नागर उच्चतर प्रेम का ही विज्ञान है, जिसकी गाथा सभी धर्म में अपूर्वता के साथ देखने को मिलती है।

माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों के प्रति सम्मान: सभी धर्म-धर्मों के भाव-पक्ष अथवा भक्ति-पूर्ण के अन्तर्गत, माता-पिता, गुरुजनों और बड़ों के प्रति सम्मान और अभाव रखने पर जोर दिया गया है।

माता-पिता का प्रेम, जलदारावत नीचे की ओर बढ़ता रहता है। गुरानी यी चा का प्रेम नई यी को मिलता रहता है। संतान के प्रति प्रेम में निर्भारता, अध्याय: प्रकृति प्रदत्त होती है। शिष्या द्वारा यतनपूर्वक मन पर रक्षित डालकर इसको आरोहित किया जा सकता है,
परन्तु बालक हेतु श्रम और यति करने की आवश्यकता है कि वे अपने बच्चों का समान करें और प्रेम भी। माँ का प्रेम अवश्य ही ऐसा होता है जिसके आरोहण के लिए किसी धर्म ग्रन्थ अथवा शिक्षा की आवश्यकता नहीं पड़ती।

वस्तुतः संतान के प्रति ल्याग और बच्चों के प्रति समान करने की जो शिक्षा परिवार से मिलती है, निस्वार्थ जीवन व्यतीत करने की यही वह आदरशिता है जिस पर विश्व प्रेम की भिन्न खड़ी की जा सकती है। यही कारण है कि इन धर्म-ग्रन्थों में, माता-पिता तथा गुरुओं के चरणों की सेवा को सर्वग समान बताया गया है। ईश्वर को भी इस हेतु, संतों पंगबरों ने माँ, पिता, कृपासागर, क्रमावध कल्पना-सागर आदि बताया है। इसी तरह अल्लाह का तात्पर्य ईश्वर, अर-रहमान का अर्थ है परोपकारी। अर-रज्जाक याने पालनकर्ता और अल-गफ़्फ़ार का अर्थ है क्रमावध। जहाँ माता का हृदय है, वहाँ ईश्वर हैं और जहाँ ईश्वर वहाँ सर्वग। विभिन्न देशों – धर्मों में, विद्या, धन, शक्ति, क्रमा आदि की देवी के रूप में माँ की पूजा का ही प्रचलन है।

"माँ का ऐसा प्रतिबिम्ब पुत्र और पुत्री के हृदय अथवा मन–मन्दिर में प्रतिष्ठित होकर उन्हें उन दुःखों, खतरों और पापों से बचाने रखता है जो मानवीय कमजोरियों से उत्पन्न होते हैं। जो युवा पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी के प्रति श्रद्धा–विनय नहीं रखती उनसे भी अपनी अगली पीढ़ी से समान नहीं प्राप्त होता और इस तरह सम्पूर्ण राष्ट्र शीघ्रही पतित और कमजोर हो जाता है।"

विद्यालय और समाज को ऐसी नैतिकता उपजाने के लिये पुस्तकों पर अधिक आश्रित न होकर, सत्संग, वृद्धजनों की सेवा, वृद्ध–अनुभवी पुरुषों के व्याख्यान, उनके व्याख्यानों की समान व सत्यकार पूर्ण व्याख्यान, उनके कार्यों की प्रशंसा, तथा विश्व के महान पुरुषों के जीवन–चरित्र और कार्यों से सम्बन्धित फिल्म आदि कार्यक्रम प्रस्तावित करने चाहिए। ज्ञानवान व विचारवान पूर्वजों व नायकों की पूजा का तात्पर्य है उच्च परिवारिक परम्परा का निर्यात। माता–पिता और संतान रूपी छोटे परिवार की एकता ही वृद्धि रूप में, पुरुष, प्रकृति और जीव के उच्चतम परिवार की एकता का कारण बनती है, सभी धर्मों में इन तीन की एकता दर्शाई गई है।

[178]
समी धर्मग्रन्थों में पति और पत्नी के सम्बन्धों और उनमें प्रेम को अत्यन्त पवित्र और 
आत्मिक माना गया है और कहा गया है, इसी से पितृलय, मातृलय, ब्राह्मण, भवनत्य तथा अन्य 
प्रकार के आध्यात्मिक प्रेम व निस्वार्थता का उदय होता है।

नैतिक शिक्षा हेतु स्वर्णिम–नियम : ईसा : का विख्यात नियम यही है कि "जो व्यवहार 
तुम अपने लिये चाहते हो, वही दूसरों के साथ करो।"  वैदिक धर्म (महाभारत) में वेदव्यास 
ने कहा है, "अत्यन्त साध्वण होकर धर्म का वास्तविक रहस्य सुनो और उसे चुनकर उसी 
के अनुसार आचरण करो, जो कुछ तुम अपने लिए हानिप्रद और दुःखदायी समझते हो, वह 
दूसरों के साथ मत करो।" कुरान : "इसके अलावा, सभी मनुष्यों के साथ वैसा ही व्यवहार 
करो, जैसा तुम अपने लिए चाहते हो और वह न करो, जैसा तुम नहीं चाहते।" जैन 
आचार्य–अंग सूत्र : "किसी जीवित वस्तु को कहीं भी न मारा जाये, ना ही किसी को 
किसी भी प्रकार जीर्ण–जबरदस्ती से आदेश दिया जाये, नाही किसी भांति पीड़ित किया 
जाये, ना ही क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाये क्योंकि, तुम यही हो जिसे तुम मार डालना चाहते 
हो।" गोतम बुद्ध : का एक ही शब्द उद्धृत करना पर्याप्त है, "समानान्तता।" 
गुरुग्रनथ साहिब : "मित्र, किसी के साथ घृणा न करो, प्रत्येक हृदय में अत्तरणी ईश्वर निवास 
करता है।"

इन स्वर्णिम नियमों का दृढ्दतापूर्वक परिपालन दैनिक जीवन में कठिन हो सकता है 
परतु इस हेतु अभ्यास और उदाहरण, शाने: शाने: व्यक्तिवादिता का हनन करेगा और 
सर्ववादिता का विस्तार। अतः इन नियमों के उदाहरणों व अभ्यास के वातावरण में बालकों 
को रखने की आवश्यकता है, इनका अभिप्राय भी यही प्रतीत होता है। इनका पूर्ण परिपालन 
किसी अत्यन्त उच्चावस्था प्राप्त व्यक्ति द्वारा ही किया जा सकता है, जिसने अपनी 
अहंमवादिता का पूर्ण विनाश कर दिया हो। अतः यही कहा जा सकता है कि यह स्वर्णिम 
नियम, उस समय तक केवल पवित्र कामना ही रहेगा जब तक समाजिक संगठन में इसे 
युक्त पूर्वक लागू न किया जाये। विधायी की विभिन्न क्रियाओं और अवसरों पर इस नियम 
विस्तार करना और सभी का इस नियम के प्रति सचेत्त रहना उपयोगी ही होगा क्योंकि इस
नियम के परिपालन के प्रयास–अन्याय और उदाहरण द्वारा नैतिकता का आरोपण ही होगा पतन नहीं। दूढ़ इच्छाशक्ति उपजाने की आवश्यकता भर है।

अविनाशी सदृशण और नष्टकारी पाप : सामान्यतः सभी धर्म धर्मों द्वारा सात ऐसे सदृशणों का उल्लेख किया गया है जिनसे मानवता से प्रेम का विस्तार अथवा भविष्य–लाभ होता है जिने ईसाई धर्म में “फेथ, हौप, चैरिटी, जस्टिस, पूर्देन्स, टेपरेंस, फाराइटीस्ट्रिट कहते हैं। वेदान्त में : इन्हें ही, सात–साधन कहा गया है, विवेक, विनोक (दमन), अन्याय, क्रिया (यज्ञादि), कल्याण (पदीत्रता), अनवसाद (बल), और अनुदर्श (उल्लास का विरोध)। वेदान्त में छह अन्य सहायक साधन भी बताये गये हैं, साम, दाम, उपारंभ, तितिखा, अख्ता और सामाजिक। इन्हें ही छह अंतरिक मित्र कहा हैं। ईसाईयत में इसी भाषा सात नष्टकारी पापों का उल्लेख है घमण्ड, लोम, कामुकता, क्रोध, लोम, मोह, मद, मतसत। आज से लगभग 5,000 वर्ष पूर्व कृष्ण द्वारा और लगभग 700 वर्ष पूर्व गोलाना रूप द्वारा इन पापों या शांतों में से दो को ही सर्वप्रथम माना गया हैं, यथा, काम और क्रोध। कृष्णान की भिन्न आयतों में इसी भाषा निर्मयता, इन्द्रियों पर संयम, अक्रोध, दया, सन्तोष, अहैतुल, दान, निर्बाध–त्याग जैसे सदृशणों पर जोर दिया गया है।

यह प्रसन्नता की बात है कि चरित्र निर्माण के क्षेत्र में इन प्राचीन धर्मग्रंथों से सहयोग करने हेतु आज चिकित्सा विज्ञान तथा मनोविज्ञान द्वारा भी कार्य किये जा रहे हैं। संडे मेल (23 सितम्बर 1990) के अनुसार, “भारतीय हृदय रोग संस्थान के अध्यक्ष डा. के एल. चोपड़ा के मत हैं, ‘ईर्ष्या, देष, लोम, क्रोध इत्यादि सब मानसिक प्रदूषण के लक्षण हैं। यह मानसिक प्रदूषण एक विश्लेष प्रकार के अणु को उत्पन्न करता है, जो हृदय, मस्तिष्क एवं गुर्दे के रोग को बढ़ावा देता है।’ प्रस्तुत लेख में डा. चोपड़ा की इस बात का अनुमोदन, जापान के डा. वाई नीरा, हार्वर्ड के डा. नादिर तथा अमेरिका के डा. पटेल ने भी किया है।

चरित्र सुधारने की विधियों पर आज जो शोध हो रहे हैं उनमें धर्म–दर्शन, योग आदि के सिद्धांतों की पुष्टि, शारीर की बायो–केमिस्ट्री, मनोरोग विज्ञान (Phychiatry), तथा न्यूरो–साइन्स्टिस्टों आदि के द्वारा की जा रही हैं। यूरोप व अमेरिका के बड़े बड़े मानसिक
चिकित्सा केंद्रों में हड़योग की प्रक्रियाओं की सहायता भी ली जा रही है। ऐसी आवश्यकता का जा रही है कि प्राचीन योग और आधुनिक परीक्षणात्मक मनोविज्ञान के सहयोग से ऐसे उपाय निकाल आयेगे जिनसे मनुष्य के चिल्ल को नियंत्रित किया जा सकेगा, चरित्र की विकृतियों को दूर किया जा सकेगा, मनुष्य की हंसिस, द्वेष इत्यादि दुष्प्रकृतियों का उन्मूलन किया जा सकेगा, उसके नशेराज की लत छुड़ाई जा सकेगी।

दो मूल पापों का एक बीज : सभी धर्म-ग्रन्थ, कहते हैं कि, अस्मिता, अहंकार, मन, खुदी अथवा Egoism ही सूक्ष्म रूप में वह बीज है जिससे, काम और क्रोध या घृणा अंकुरित होते हैं और ये नष्टकारी पाप इस एक बीज से बढ़ते ही जाते हैं। यह अहंकार भी, अविश्वास, वहम, अनुद्ध, इल्टूजुन, नेशनल (ज्ञान का अमाव) से उत्पन्न बनाया गया है। जब अविश्वास (यथार्थ धर्म का अमाव) के कारण, मानव स्वयं से छल करता हुआ, सोचता है कि वह उस अन्तराल अस्मिता से पृथक है तथा अन्य मानवों की तरह, वह एकता, मांस, से बना हुआ होते ही, अन्यों से विशिष्ट और श्रेष्ठ है, उसका अर्थशास्त्र, ईश्वर, सर्वव्यापी - एक - आलमा, मानवों, प्राणियों, चेतन, अचेतन से पृथक है, उसकी बुद्धि, बल, जाति, धर्म, देश, पद आदि ही श्रेष्ठ है, अन्यों का निन्दा, उसे ही प्रमाणित करने या दर्शाने के ब्रमजाल मेंम फंसकर वह स्वार्थों, खुदराज तुरंतियों और अनैतिक कार्यों से धीर जाता है। इससे में अविश्वास हेतु "कुम" राज का प्रयोग किया गया है जिसका ताल्मूर्य है, "स्वयं को छिपाना।"

तीन प्रकार की तृषाओं, भूख या कामनाओं भी विभिन्न धर्मग्रन्थों द्वारा बताई गई है: गान की ये तृषाओं हैंः गृह्यु से बचाव, स्वयं की उन्नति और स्वयं की गणना बुद्धि। इन्हें ही, भवतुल्य विभव तुल्यां और काम तुल्य कहा गया है। अन्यत्र इन्हें, जर, जमीन और जीर स्थान वह Woman, Wine और Wealth - (Three - W) कहा गया है। मनोविज्ञान की भाषा में इन्हें, इन गांपलेक्स, प्राप्ती कामपलेक्स और सेक्स कामपलेक्स कहा गया है। इन मौलिक तृषाओं की उचित और संघर्ष विहीन पूर्ण एवम् मानव समाज के अस्तित्व की रक्षा के लिए ही मानव समाज में तीन प्रमुख संस्थाओं का उदय हुआ है।

(i) विवाह, (ii) सम्पत्ति, (iii) विवाह-परिवार।

[181]
मानव की इन लृणाओं पर समुचित नियंत्रण की आवश्यकता है। अतः सभी धर्मों द्वारा इन लृणाओं के प्रति संतुलन हेतु, अहिंसा, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। तक—इ—इज्जा—रसानी, तक—इ—दोलत—फक्क, तक—इ—शहबद, Non-violence, Voluntary-Poverty, तथा Continence आदि की शिक्षायें दी गयी हैं। जब “सब की एकता का महान सत्य” उठ खड़ा होगा तो ये लृणायें, स्वभाव अति विहीन हो जायेगी तथा संघर्ष विहीन और शोषण विहीन मानव समाज का संगठन होगा। जबकि धर्मनिरपेक्षता की वर्तमान अवधारणा निषेधात्मक होने के कारण, विभिन्न दुराइयों, अनैतिक कार्यों, और पापों आदि के बीज तत्त्व “अंकार” के नाश के प्रति पूर्णप्रभुत्व उदासीन है और यदि यही अवधारणा सकारात्मक बना कर शिक्षा के क्षेत्र में व्यवहार की जाय तो “अंकार” के नाश के प्रति सचेत हो जायेगी।

सभी गुणों का एक बीज तत्त्व : जिस तरह सभी बुरी इच्छाओं, पापों का उदय स्वाधीन और अलगाववादी “अहमवादिता” से होता है, ठीक उसी तरह सभी सदृश्याओं, उत्तम विचारों और सदृश्यों का उदय, इस महान सत्य से होता है कि, 'एक ही आत्मा सब में व्यक्त है।' निःस्वाधीन, सदृश्यादिता, आत्मन्याय, निरंतरादिता, बेकारी आदि शब्द इसी महान सत्य के उपस्थितिकार हैं।

काम और कौशल या घुणा के अंकुर “अहमवादिता” के बीज से अंकुरित होते हैं। ठीक उसी तरह भविष्य, करण, इति—इ—हकीकी, रहम, Spiritual-love आदि का अंकुरण, “निःस्वाधीन—परोपकारी “सदृश्यादिता” से होता है। क्राइस्ट का कथन है, “अपने सम्पूर्ण उदय से ईश्वर को प्रेम करो और अपने पड़ोसी से भी उतना ही प्रेम करो।” कुरआन : “श्रेष्ठतम धर्म यह है कि, अन्य तुमसे अपने को सुरक्षित समझो, समुन्नत, इस्लाम वह है, जिसमें सभी तेरी जुबान और हाथों से अपने को सुरक्षित समझो।” ईश्वर के आदेश के बिना अनु मात्र भी हिल नहीं सकता।” महामहामाति : “अपनी ही आत्मा में सत्य—अपत्य। उचित—अनुचित देखो। जो अपनी ही आत्मा में सब कुछ देखता है, उसका मन कभी भी पाप कर्म की ओर प्रवृत्त नहीं होता है।” बुद्ध : “जब तक आहं भाव बना हुआ है, जब तक उसमें सांसारिक या परालोकिक सुख की वासना विधामान है, तब तक सारा शरीर शीर्ण व्यस्त है। परस्पर
जिसमें अहं माया नष्ट हो गया है, वह काम से मुक्त हो गया है, ऐसा व्यक्ति ना तो सांसारिक सुखों की कामना करता है और ना स्वर्गिक सुखों की तथा अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं की संतुलित से वह अपरिवृत्त नहीं होता। उसे शरीर की आवश्यकता के अनुरूप खाने पीने हो।”

इस भौति सभी धर्मग्रन्थ, “एक ही सर्वव्यापी आत्मा” के सिद्धांत को मान्य करते हैं और उसी को सभी सदगुणों का मूल बीज मानते हैं। आत्म केवल वही व्यक्ति सदगुणों और दुःखों के विशाल सागर में, अपनी नाव भलीभोल खे सकता है, जो, “एक ही सर्वोच्च आत्मा” के यथार्थ-ज्ञान से परिपूर्ण हो, उसी की भक्ति करता हो या प्रेम में विभोर होकर उसी को अपने सारे कर्म अर्पित करता हो।

मानव में ईश्वरत्व : इस तरह सभी धर्म-सम्प्रदायों में, “एक ही सर्वव्यापी आत्मा” को मानव की सच्ची पथ-प्रदर्शक और अचूक साधन माना जाता है, जिससे मानव की परापी निन्द्रित विमुख हो, अपनी ऊत्क विकृति या ईश्वर के संग हो जाती है। यह, खुदी को खुदा, अहंकार को प्रहममय और अभिमान वासना को शुभ वासना में बदल देती है। इस तरह, अनेकता, भेद-भूत्व, तत्काल, इन्द्रियाल, नैसर्गिक आदि का परिवर्तन, अनेकता, अभेद-भूत्व, वहादर्न, इन्द्रियाल, आयानित में हो जाता है। स्वार्थ, परमार्थ हो उठता है, खुदगर्जी, अर्थगर्जी में बदल जाती है और मानव में ईश्वरत्व प्रकाशित हो उठता है, जिन्हें संसार, अवतार, मरी, वैभव आदि के रूप में पूज्यता है, जिनके एक इशारे पर साधारण-मानव अपन सर्वस्व ल्याग्दे है। सभी धर्म-ग्रन्थ इस सत्य पर एकत्व होते हुए नेतिकता को ही पुनः पुनः प्रतिस्थापित करते दिखते हैं :

सूफीवाद : “मेरे लिये मेरे और कुछ नहीं, सिर्फ़ खुदा है!” उपनिषद : “जो भ्रम को जानता है वह स्वयं भ्रम है!” बुद्ध : “तथागत को उसके नाम से मत पुकारों न उसे नित्र ही कहो, क्योंकि वह बुद्ध है। बुद्ध करवापूर्व हुद्ध से समस्त प्राणियों को समान दृष्टि से देखता है और इसलिए उसे पिता कहते हैं।” नाईविल : “तुम्हें लोग पिरवासपूर्व कयों नहीं होते कि परम पिता मुझमें है और मैं परमपिता में? वह मद्य जो मैं तुमसे कहता हूँ, वह मैं स्वयं नहीं बोलता, परंतु वह परम पिता कहता है जो मुझमें बसता है, यह उसी का कार्य
है।" कूर्वान् : "उदारता के साथ, अलगाववादी सभी लोगों की उंक्षा करते हुए, केवल मेरे बारे में सोचो, तो मैं तुम्हारे बारे में ही सोचूंगा।"

ऐसे तात्त्विक और मनोवैज्ञानिक आचारों पर ही ईसाई धर्म के संस्कार, "लास्ट अंक्वसन" और "कन्फेशन आफ पोल" आधारित हैं। जिनके द्वारा शायर छोड़ने वाली आत्मा के सम्पूर्ण सांस्कृतिक मंत्र व विवेचना और धार्मिक विश्वासों-सिद्धांतों की अभिव्यक्ति की जाती है, जिससे शायर छोड़ने वाली आत्मा सांसारिक मोहों से छूट जाय, उसके अंतिम विचार पद्य हो, महानिधि में उसे सुख-शान्ति प्राप्त हो और परम पिता या ईश्वरस्य से उसका सु-संयोग हो। अत्यधिक सांस्कृतिक मात्रा में, ऐसा ही अन्य सभी धर्मावलम्बी करते हैं।

गहरी निद्रा भी मूल्य तुल्य होती है। अतः बालकों को बड़ी ही इच्छा और सम्मान पूर्वक यह सिखाना चाहिए तथा सभी स्त्री-पुरुषों को यह नियम सा बना लेना चाहिए वे, नित्य सोने से पूर्व कोई ऐसी कविता या प्रार्थना का पाठ करें, जो पद्यात्म आत्मोद्दात बनते हैं। हृदय को स्वस्थ करने वाली हो। इस तरह उनके बचपन से ही उन्हें सामाजिक और उद्योग बेचता शाक्ति उन्नत होगी तथा उनकी समाज पूर्ण आत्मा व शान्ति के उन्नत होगी। यह दर्शन में इसे ही योग-निद्रा कहा गया है। इस तरह जब वैद्यक्तक कहीं जाने वाली आत्मा की सार्वभौमिक आत्मा के साथ यथार्थ पहचान स्थापित होगी, वैद्यक्तक शायर अपनी पद्यात्म, भक्ति, निरामिषता और आत्म-स्वाभाव के कारण ईश्वर का पद्य उन्नत मन्दिर वन जायेगा, केवल तभी, अलोकित शक्ति अपने मनोरम का आवरण हटायेगी, और केवल तभी कोई व्यक्ति निरामिषता होने के पश्चात बिना अन्य को ही आने पहुँचेगे।

सबके काल्याण के लिये ईश्वरीय शाक्तियों के प्रयोग के योग्य होगा।

वस्तुतः भक्ति मार्ग अथवा धर्म के पात्र-पक्ष द्वारा, ईश्वर की निक्षेपक खोज की जाती है। इस खोज का प्रारम्भ-गत्य-अन्त, प्रेम के भव्य में होता है। ईश्वर के प्रति एक क्षण की भी प्रेमोपन्नता, हमारे लिये शाश्वत अमृत, निर्वाण, निगरान देने वाली होती है। जब मृत्यु इसे प्राप्त कर लेता है। तो सभी उसके प्रेम पात्र बन जाते हैं। भक्ति अथवा भाव पक्ष का सबसे बड़ा लाभ यह है कि, यह हमारे सार्वभौम लक्ष्य, अमृत, निर्वाण, निजात, पैलेस आफ लय,
आदि की प्राप्ति का सबसे सहज उपाय है, बस ईश्वर के लिए सच्ची व्याकुलता भर होनी चाहिए, जैसे पानी में लूबा ऊपर आने को छटपटाता है।

एक बड़ा खतरा : ज्ञान—मार्ग की भविति, भविति—मार्ग में भी एक बड़ा खतरा है। भविति—मार्ग में एक विशेष भय की आशंका यह है कि यह अपनी निम्न या गीणी अवस्था में, मनुष्य को बहुधा मताधि कोटन बना देता है, यद्यपि इस मलाण्वता के पीछे कोई यथार्थता नहीं होती है। हिंदू मुसलमान या ईसाई समाज में जहाँ कहीं इस प्रकार के धर्मान्ध व्यक्तियों का दल है, वह सदैव ऐसे ही निम्न श्रेणी के भक्तों द्वारा गाढ़ा हुआ है। सभी धर्मों की सार्वभौम समानता से अनभिज्ञ, अविकसित और दुर्मल मस्तिष्क के ऐसे लोग, अपने आदर्श अथवा ईश्वर से प्रेम करने का एक उपाय ही जानते हैं और वह है, अन्य सभी धर्मों, आदर्शों, प्रतिकों या ईश्वर को धृष्टि की दृष्टि से देखना, गोया इससे उनका तथाकथित पृथक ईश्वर प्रसन्न हो जायेगा। इस तरह ऐसे लोग, अन्य धर्म सम्प्रदाय की यथार्थता को जानने के लिए तैयार नहीं होते।

इस तरह की भविति या प्रेम को इसक—भिजाजी ही कहा जा सकता है। यह तो "उच्च स्तर" को "निम्न स्तर" में गिरा देना, काम, राग या क्रेश को भविति मानना, तथा प्रेम और भविति के स्वराज्य को, शैलान का राज्य बना देना है। यह अति स्वूगम, खतरनाक मूल भी अह्वालिता से ही उत्पन्न होती है। यह बालान्तर ही स्वर्ग को नर्क में बदल देता है। भविति की यह निम्नतर अवस्था जब परिप्रेक्ष्य हो उच्चवर्ग में पहुँचती है तो वही भक्ति, धर्म, मत, ईश्वर, देश के मेदमाय के बिना, सबसे प्रेम करने वाला हो जाता है। स्वर्ग है स्वदेश करना अति उत्तम है परन्तु उसे ही सबका उद्देश्य मनाना यत्त्रणायें बढ़ाना ही है।

खुदा और खुदी, नर्क और स्वर्ग, के बीच की महीन ढरार पर चलने के लिए, सभी धर्मों में एक ही सुखस्क—कवच है। यह कवच, शिक्षा या मंत्र है, "अपने हृदय में निस्कर्ष भाव से, सर्वदयान—प्रेम उत्पन्न करो!", "अपने एक मात्र मित्र को सबमें जानो!" सर्वस्व को पाने के लिए सर्वस्व त्याग दो!" "विनयशीलता का दिखाया नहीं अनुभव करो!"

[185]
विभिन्न धर्मों के भक्ति मार्ग अथवा मायावद्ध में, अपने कर्तव्यों के प्रति निष्ठावादन होने की शिक्षायें दी गयी हैं, ऐसे मानवों को ही हर्मनिष्ठ कहा गया है। इन धर्मग्रन्थों में यह भी शिक्षा दी गई है कि विभिन्न विशेष परिष्कारात्मक में मानव के क्या कर्तव्य या फर्ज हैं। इनको परिनामक बनाये हुये इन्हें, ऋण, देय, प्रतीकित, दादा (पारसी), दाता (जोरोस्ट्रियन), की संज्ञायें दी गयी हैं। इनमें इस तथ्य का रहस्योद्घाटन भी किया गया है कि अपने कर्तव्यों को करने से ही, ये कर्तव्य उल्लास के साधन बन जाते हैं। साथ ही जिन पांच सदृश्यों की शिक्षा, मनु, मोजेज, बुद्ध, जिना क्राइस्ट, मुहम्मद आदि ने दी हैं वे मात्र पारलोकिक नहीं हैं, वे भी मानव जाति को एक संगठित समाज के रूप में जोड़ने के लिए सीमेंट की भूमिता कार्यकरी हैं। जिस किसी समाज में इन शिक्षाओं की उपेक्षा की जाती है वह समाज शीघ्र ही पदलित और अक्षर हो जाता हैं। क्या आज मानव समाज की दलितवस्था, प्रत्यक्ष हो इस तथ्य की पुर्ति नहीं कर रही हैं? मानव समाज को आज जिस भावनात्मक एकता की आवश्यकता है, उसकी पुर्ति इस भक्ति / प्रेम मार्ग, अथवा धर्मों के भाव पक्ष द्वारा सहज है। क्योंकि विभिन्न धर्मग्रन्थ, मानव को भावनात्मक स्तर पर जोड़ने, दूसरों के लिये त्याग करने, उन्हें प्रेम करने व बदलते में प्रेम प्राप्त करने की व्यवहारिक सहज और प्रभावी शिक्षा प्रदान करते हैं, मानव हृदय में बसने और प्रेम के सूक्ष्मतम अंश का वृहद्वाय विस्तार करते हैं और इसी प्रमाण अन्य धर्मों के सत्य होने के यथार्थ की पुर्ति भी।

महाभारत, "जो भी न्याययुक्त लगे उसे शीघ्रता से ग्रहण करो, भले ही वह किसी पालक के हुह से निकला हो।" बृहदारण्यपि, "कोई भी आत्मा दूसरी आत्मा से महत्तम नहीं हैं।" कुरआन, "ईश्वर स्व-कृपाति गर्व से प्यार नहीं करता।" हजरत अली, "यह देखो क्या कहा गया है, यह मत देखो कि वह किसने कहा है।" हदीस, "जमाने के बढ़ते कदमों के मुताबिक पाँच सीखो।" बाईबल, "सदाचार प्राप्त करो और तभी दूसरी अच्छी बाते इससे जुड़ जायेंगी।"

विभिन्न धर्मग्रन्थों द्वारा स्वाभाविक, पाठक्षण, पोष-पादरियों, पण्डितों, मौलिकों आदि से साक्षात्कार रहने की चेतावनी देते हुये अपने विवेक-ज्ञान पर अवलंबित होने के लिये कहा गया है:
गीता : “बुध्धि नाश होने और आत्मा के पतित होने पर अन्त में अपनी विचार शावित की शरण लो!” कुरान : “स्वयं अपने हाथों से वे लिखते हैं, छोड़ करते हैं और तुमसे धोखा कर कहते हैं कि, यह खुदा का आदेश है, जबकि वास्तव में वह कृपा भी इश्कदारेश नहीं होता.” बाइबिल : “शुरू पैगम्बरों से होशियार रहो जो तुम्हारे पास आते तो हैं, बेद के लबादे में परन्तु अन्दर वे मूके में होते हैं।”

विविध धर्मों के भाव पक्ष में आत्मनिर्माता (स्वाध्याय) की शिक्षा भी दी गई है। इस आत्मनिर्माता अथवा स्वाध्याय के आत्म अथवा स्व-तत्व को चूँचा उठाने और इस पर पूर्ण निर्भर होने की आवश्यकता मात्र है सारी नीति और धर्म इसमें समा जायेगा, क्योंकि जो मानव अपने सम्मान और रोग के लिये इत्यादि-उद्धर मारे किरते हैं, इसके लिए उन वस्तुओं के दास बने किरते हैं, जो उत्पन्न होती है और नष्ठ हो जाती हैं, उन्हें सुख नहीं, दासत्व और भटकन ही हात्य लगेंगी। इसके विपरीत जब वे ऐसे आत्म तत्त्व पर निर्भर होंगे जो कभी उत्पन्न नहीं होता, नष्ठ नहीं होता, और धूमिल नहीं होता, केवल तभी वे यथार्थ सुख, शान्ति और महानता प्राप्त करेंगे। यह आत्मनिर्माता परम निर्देशक है। गाथों जो अपनी कथा शिक्षा योजना में धर्म शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं रखी थी। जब इस अभाव की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया गया तो उन्होंने कहा, “कोई कहता है कि इस शिक्षा में धर्म-शिक्षा का अभाव है। मैंने इस योजना के द्वारा “स्वाध्याय” के महान धर्म को पढ़ाने का प्रबन्ध किया है।”

छात्रों का भायात्मक अथवा संयोजनात्मक विकास करने, किसी आदर्श की भविष्य की ओर उन्मुख करने का सर्वोत्तम समय, उनकी किशोरावस्था होती है। इसी समय उनकी जिज्ञासा प्रबल होती है जो ज्ञान वर्धन की प्रबलतम प्रेरणा का कारण भी बनती है। किशोरावस्था में वह स्वयं अपने, इंसान के तथा इस्लाम में से रहने को जारी रखता है। इससे साथ अपने कर्त्तव्य, सम्बन्धों तथा व्यवहारों को समझना चाहता है। अतः इस समय किसी भी प्रकार की निषेधात्मक शिक्षा, उसकी जिज्ञासा की भावना का दंभ ही करेगी क्योंकि इसी समय उसकी आत्म-चेतना जागृत होती है। वह अपने को संसार के इस जीवन चक्र का महत्वपूर्ण अंग मानने लगता है। वह अपनी भावनाओं और प्रेम को,
जीवन के किसी नियतवत लक्ष्य एवम् आदर्श पर केन्द्रित करना चाहिता है, इस प्रकार सदाचरण, नैतिकता, दर्शन, धर्म और आत्म सम्बन्धी प्रश्न उसके परिणाम में आते हैं, धर्म में उसकी आस्था बढ़ती है और वह आदर्श पूजक भी बनना चाहता है। यहीं वह अवसर होता हैं जब शिक्षक उसकी पहचान, सर्वोच्च, अविनाशी आत्म तत्व से करवायें और आत्म-निर्माण के सर्वोच्च आदर्श के पाठ का शान: शान: उनमें विकास करें। इसी समय उन्हें विभिन्न धर्मों के समान सार्वभौमिक सत्यों तथा इनमें निहित भावनात्मक प्रेम, भक्ति सम्बन्धी विनिरंत्र और उदात्त अवधारणाओं को हुदयांगम करा तर उनकी जिज्ञासा शान्त की जाय। ऐसी शिक्षा से उनके उत्तरार्थ, सद्भावानाओं, सहानुभूति और प्रेम के आदान प्रदान में गुणन वृद्धि होगी। विद्यालय में विभिन्न धर्मों के ल्योहार इस हैल-मैक को व्यवहारिक लु-अवसर प्रदान करें।

[4] सभी धर्मों में कर्म-मार्ग अथवा संकल्पानुसार आचरण :-

मानव जीवन में ज्ञान-इच्छा क्रिया, हस्त-ख्याहित-फल, Cognition, Desire, Action का चक्र समृद्ध चल रहा है। पहले हमे ज्ञानेन्द्रियों से किसी वस्तु या घटना का ज्ञान होता हैं, फिर हमारे में इसके पक्ष या विपक्ष में इच्छा उत्पन्न होती हैं, नई विविधता नया ज्ञान लाती हैं, जिससे नई इच्छा उत्पन्न होती हैं, जो नये क्रिया-कलाप का कारण बनता है। इस तरह ये तीन भागें जीवन में निरंतर चक्रवर्त घटित हो रही हैं। अविभाज्य होते हुए भी इनका विभाजन क्रिया जा सकता है। यही तीन तत्त्व, धर्म में भी अविभाज्य होते हुए भी विभाजन करने योग्य हैं। व्यवहारिक जीवन में देखा जाये तो, शैक्षणिक से जब यहाँ जीवन का प्रारम्भ होता है तब हमारे अपने पालन पोषण के लिये तीन इच्छा होती हैं, परंतु बायावस्था आती है, निर्देशन देने वाले क्रिया कलापों से भरी हुई। इसके बाद बुद्धि विकसित होती है और उसे कुछ क्रमबद्ध, समझदार और संगठित ज्ञान प्राप्त होता है। कुछ और बड़े होने पर इच्छाओं महत्वाकांक्षायें बढ़ती हैं और तदनुपात पेशीदे और साहसिक क्रिया-कलाप। ऐसा ही कुछ धर्म के बारे में है, जिसकी प्रभाव अवस्था है आत्म के पोषण की इच्छा (न्यूनाधिक्य अपरिपतव)। दूसरे शाब्दों में इस जीवन में प्राप्त से अधिक की आकांक्षा
पश्चात्त, इसका कार्यक्षेत्र आता है, ये आफ वक्त, शरीयत, कर्म मार्ग, विद्या-संस्कार, आचरण आदि। इसके बाद ईश्वर अथवा परलोक के बारे में धोखा बहुत झान, बोध। तत्पश्चात् ईश्वर के लिये व्याकुल इच्छा, ये आफ डिवोशन, भवित, तरीक्त, उत्कर्ष, पूजा, मानसिक पूजा, प्रार्थना प्रेमातुरता, विनयशीलता, उच्च अध्ययन, स्वास्थ्य, वहूं और खोज, योगाध्यास आदि। इस भाव पक्ष के तदनन्तर झान-मार्ग, झानप्रकाश, हकीकत या मारिकत, वांछित की प्राप्ति।

अन्ततोगत्वा, पुनः तीनों का समन्वय, सुविचारित लोक-कल्याण की इच्छा – विश्व र्रम की चेतना-(लड़कपन की भांति आवेगपूर्ण नहीं) और सुविचारित, उपयुक्त और कर्त्तव्यपरायण आचरण (कर्म)।

ये आत्माओं जो अपने अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेती हैं, उनके लिये तीनों मार्ग एक ही में मिल जाते हैं। परन्तु उन लोगों को ये मार्ग पृथक ही दिखते हैं जो जीवे-धीरे परन्तु दुःख के साथ अपने अन्तिम लक्ष्य की ओर अग्रसर हैं। बौद्ध कर्म प्रत्यक्ष रूप से दिखते हैं, इच्छा-झान नहीं दिखते, ये केवल कर्मों में परिलक्षित होते हैं। अतः: कर्मों में भेद-भाव, रंगरंग, भानितियों स्वभाविक रूप में दिखती हैं। कर्मकाण्डों का यह भेदभाव अथवा अति, विशेषकर उन लोगों में अधिक दिखती हैं जिनमें अभी लड़कपन है, जो अपरिपेक्ष हैं। यही कारण है कि धर्मों के बीच जो भेदभाव पाया जाता है वह धर्म के इस तीसरे भाग, कर्मकाण्ड, शरीयत या मामिलात में ही अधिक दिखता हैं जबकि ये केवल वायु पश्चात् हैं और धर्म के इस वायु-भाग के अन्तर में अत्याधिक सार्वभौम समानता है।

विभिन्न धर्मों में अनेक कर्म मार्ग हैं। तरह तरह के यज्ञ, संस्कार आदि कृत्य हैं, परन्तु ये सभी उस सम्बंध तत्त्व की ओर ही उम्मुख हैं जहाँ झान, भवित, कर्म एक हो जाते हैं, मार्ग, साधन विलीन हो जाते हैं, कच्चा आह दूत जाता है, विध।

प्रार्थना : प्रेयर, नमाज, पूजा, वैदिक सन्ध्योपासना आदि, प्रार्थनाओं चाहें वैदिक हो या ईसाई, जोवोनिट्रस्ट्रयन, इस्लामी, परसियन, ग्रीक आदि कही की भी हों, ये सभी एक दूसरे की प्रार्थना का अनुवाद मालूम पड़ती है। इन सबमें सभी प्रार्थना की लौकिक और अलौकिक राजशाहियों के अग्नि सागर की ही प्रार्थनाओं की गई है। इन प्रार्थनाओं द्वारा, सद्भाव,
सदिश्चाओऽ, आन्तरिक प्रकाश मार्ग—दर्शन, बुद्धि इच्छाओं और कार्य से रक्षा करने हेतु याचनायें की गई हैं। बड़ी स्पष्ट सी बात है, यदि बुद्धि न्यायपालिका और गुद्ध हैं और ऐसी बुद्धि द्वारा संचाहित इच्छाशक्ति दूर नहीं है तो हर कार्य ठीक ही होगा।

शिक्षक इस प्रार्थनाओं के द्वारा बालकों की सुकुमार अवस्था में, उनके हृदय के सूक्ष्मतम तत्त्व को छूटाने, उसे पवित्र व प्रकाशवान कर एक नई सम्पत्ति वाली पीढ़ी का निर्माण कर सकते हैं। सभी धर्मों में असंख्य ऐसी प्रार्थनायें हैं जो एक ही प्रकाश की याचना करती हैं, अपने लिए और सबके लिए। अतः विद्यालयों में सुनिश्चित सर्व धर्म प्रार्थना समायोग प्रायोजित कर, बालकों को भावनात्मक एकता और अभिव्यक्ति के सूत्र में बैठाते हुए, इच्छा—शक्ति को दूर करते हुये उन्हें सदाचार के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

पाप या अपराध की स्वीकारोत्सक या प्रायश्चित के लिए भूख मनुष्य, लोगों से सदैव बच नहीं पाता। अक्षर उनकी ऑखों और हृदयों पर अंधेरा छाये ही, वे बार—बार पाप के गले में गिर जाते हैं। अतः सभी धर्मों में पापों से निवृत्ति हेतु प्रायश्चित की क्रिया निर्धारित की गई है।

इसके प्रायः तीन चरण हैं, पश्चाताप — प्राक्षापन और प्रायश्चित। नदम—एतराफ और कथकार। Repentance, Confession और Expiation आदि।

यह ध्यान रखने योग्य है कि कर्ता द्वारा मात्र पश्चाताप ही पर्याप्त नहीं है, किसी लंबे समय पुरुष के समक्ष स्वीकारोत्सक होनी चाहिए, तत्पश्चात प्रायश्चित स्वरूप, पापी द्वारा पीड़ित व्यक्ति की यथास्थाय क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। पीड़ित व्यक्ति के उपलब्ध न होने पर, उससे प्रमाणित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति होनी चाहिए, अन्यथा किसी अन्य नैति पापी द्वारा अन्यों के साथ दान, सेवा आदि के कार्य होने चाहिए।

इस तरह सभी धर्मों में ये तीन प्रकार की क्रियायें "पुनर्शिक्षण" (Re-education) का कार्य करती हैं। इनके द्वारा व्यक्ति के खोये हुये सदाचरण की पुनस्थापना होती है। किसी शारीरिक आघात या मानसिक असंतुलन के कारण व्यक्ति जब कोई अनैतिक कार्य,
पाप या अपराध कर बैठता है तो ये धार्मिक क्रियायें उसमें नैतिकता, सदाचार, अच्छे भाव
और शिक्षा आचरणों की पुर्णस्थापना कर उसे पुनः समाज के अनुकूल बनाती है। "पुनः-शिक्षण"
के आधुनिक पद का भी यही प्रयोजन है। यह शब्द, कुछ अंशों में पुनर्जन्म, द्वितीय जन्म,
हृदय परिवर्तन, पुनर्जीवन आदि शब्दों का ही नया नाम है। ये पुराने शब्द जब जीवन होकर
अपना महत्व खोने लगे और पुराने प्रीस्ट-डाक्टरों को मिथ्याचारी माना जाने लगा तो
परिवर्तनस्वरूप इस वैज्ञानिक अथवा मनोविश्लेषणात्मक आधार वाले शब्द का प्रयोग, शिक्षा
के क्षेत्र में किया जाने लगा है। नये शिक्षक-विद्यालयों को अब शरीर और हृदय दोनों की
समान रूप से चिकित्सा करनी होगी क्योंकि प्राय: दोनों एक साथ रूप होते हैं। यह गात
दूसरी है कि कभी शरीर अधिक रूप होता है तो कभी हृदय। भविष्य के इन चिकित्सकों
को "आध्यात्मिक-वैज्ञानिक" या "वैज्ञानिक-पादरी" जैसे उद्ध छोड़े तक पहुँचा होगा।
जेल-सुधार अथवा केंद्रों की शिक्षा के बारे में आधुनिक प्रवृत्तियाँ इसी दिशा में कार्य कर
रही हैं। परंतु इसमें सबसे गहरी दृष्टि यही है कि ऐसी शिक्षा द्वारा केंद्रों में यह मानना
नहीं उत्पन्न की जाती, ऐसे अवसर नहीं प्रदान किये जाते अथवा ऐसे कार्य नहीं कराये
जाते हैं कि वे अपने द्वारा किये गये उत्तेजन के प्रति पश्चात्ताप कर और प्राय: सिद्ध सिद्ध
पैठते व्यक्ति को पहुँची हानि की पूर्ति किसी भीति कर सकें। ऐसा न करने का ही यह
दुसरित्यांग है कि आज जेल केंद्रों के वाँचित शरणगृह अपराधी कार्य सीखने-सिखाने के
केंद्र बन रहे हैं। साथ ही नये अपराधी उत्तरोत्तर बड़े अपराधी बन रहे हैं।

तरह-तरह के दान-दाय और करुणापूर्ण कार्य : सभी धर्मों में ऐसे कार्यों को बड़ा
महत्व दिया दिया गया है जिसके केंद्र में वही "आत्मवाद सर्वभूमित" की धार्मिक शिक्षा
कार्यकारी हैं। सर्वोपरि, दान, जकात, धर्मशाला, स्वाधीनता, विधालय, अनाधिकार, विश्व ग्रह,
मेंधर, महिलाएं सड़क-निर्माण तथा सूखों को भोजन देने जैसे अनेक कार्य ऐसे ही कार्य
हैं। शिक्षा और जन कल्याण से समस्तिक ऐसी जिन सेवाओं का प्रारम्भ हरैलेग्द में चली
द्वारा प्रारम्भ किया गया था, उनमें से अधिकांश कल्याणकारी सेवाओं का दायित्व बहन अब
वहाँ की सरकार द्वारा किया जा रहा है। भारत की सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था युगों तक इसी
दान–ज्ञान–शिक्षा पर आक्षेप रहे। विद्या–ज्ञान–शिक्षा प्रदान करने का कार्य एक धार्मिक कार्य माना जाता रहा।

dैवी प्रकाशन: सभी अपने धर्म ग्रन्थों को ऐसे नामों से सम्बोधित करते हैं जिनका एक ही तालमेल है, यथा, ब्रह्म–वाक्य, Words of God, कलाम–उल्लाह, गादस्पेल (God–spell)। सभी इन्हें दैवी प्रकाशन मानते हैं। सभी धर्मग्रन्थ एक ही प्रकार से व्यवस्थित हैं, अध्याय और मंत्र, Chapters and Urse, सूरा और आयत। सब पर न्यूनाधिक्य मात्रा में, भाषा, Commentary, टीका, तत्त्वज्ञान और तस्वीर (कुरान) और टालमुद (यहूदी) आदि लिखे गये हैं। सबमें, स्रोतात्मक, अध्यात्मिक–विख्यात, फिकह (कुरान), Exegesis आदि हैं। सभी दैवी प्रकाशन बताते हैं कि उनके धर्म के दो पक्ष हैं, एक जनसामाज्य के लिए दूरस्थ कुछ उच्च आत्माओं के लिए। जिस तरह उपनिषद वेदों के रहस्य है उसी तरह ऑल्ट्ड–टेस्टामेंट का काबालह, कुरान का तस्वीर है। सेंट जान और सेंट पाल का रहस्यवाद भी इन रहस्यवादों के समान है। इसी प्रकार सभी धर्म ग्रन्थों में समान रूप से धार्मिक विधि–विधान आदि दिए गये हैं।

ईश्वर के पवित्र स्थान: सभी धर्मों में ईश्वर के पवित्र स्थान होते हैं। श्रूंदक मानव का एक स्वरूप है, अतः उसने ईश्वर का भी एक स्वरूप माना है। मानव अपनी प्रकृति के द्वारा ईश्वर को मनुष्यवत ही जानने के लिये विविध है। यदि विविध पशु ईश्वर–पूजन करना चाहे तो वे अपनी प्रकृति के अनुसार ईश्वर को महान – गाय, मैस, शेर आदि के रूप में ही देखेंगे। यदि कल्पना की जाय कि मानव, गाय, मैस आदि विभिन्न बर्तन हैं और वे बर्तन समुद्र रूपी ईश्वर में अपने आकार तथा पात्रता के अनुसार भरने को जाते हैं। तो मानव में वह जल मानव का रूप धारण करेगा, गाय में गाय का रूप, शेर में शेर का रूप, परस्तु इन सभी बर्तनों में उसी समुद्र रूपी ईश्वर का जल होगा। श्रूंदक ईश्वर को पुरस्त आकार या स्वरूप विविध मानना किंतु दुर्ख दुस्कर होता है अतः सभी धर्म वाह्य पूजा से धीरे धीरे हटकर, अन्यायान्तरिक–पूजा की ओर उन्मुख होते हैं। परस्तु प्रत्येक जगह का धर्म, स्वर्गीय पंडितों, पुरोहितों मौलिकों, पादरियों आदि के चुंबल में फंस कर क्रूर हो उठा बजाय इसके कि वह
लोगों को अपनी प्रकृति और सुविधानुसार समुदाय-निर्माण, वाह्य आत्मारूप रूप में पूजा करने देते और उन्हें वाह्य पूजा से धीरे धीरे हटाकर आत्मारूप-पूजा की ओर ले जाते, उच्च स्तर की ओर ले जाते है। धर्म के इन तथाकथित सख्यालों ने इन सारीती पाठों को लेकर, मूर्तित्वपूर्ण अंधविश्वासों, मनोव तथा धर्ममद्धा द्वारा लोगों को उन्मादी बनाया, तमाम खून खराबे करवाये और अपने स्वार्थ सिद्ध किये।

सभी धर्मों के विशिष्ट पवित्र स्थान, स्तन के स्थान पवित्र शहर, तथा तीर्थ-यात्रा आदि होते हैं। परन्तु इन सबका मन्त्र एक यही है कि, लोगों का ध्यान धर्म के उदात्त विचारों, आध्यात्मिक और सदुपादणों की ओर अनुयोग्य किया जाय। सभी धर्मों के तीर्थस्थान चाहे वह भक्ति, सारणाथ, काशी, कुमारश्लाम या जेहानालम हो सबका उद्देश्य यही है कि ऐसे मिलन केंद्रों के द्वारा संसार के लोगों को एक जगह धार्मिक व आध्यात्मिक खातायावर में एकत्रित किया जाये, ताकि उनकी सामान्य संस्कृति, साम्य सहायता और मानवतावाद का विस्तार हो, विचारों में एकता हो।

कुछ धर्मों में वृत्ति पूजा आदि होते हैं, कुछ में ना ही। वृत्ति पूजा किन्ही सीमाओं में उपयोगी हो सकती है जब तक इसे मात्र प्रतीक अथवा ईश्वर की स्मृति स्वरूप माना जाये और इसका वास्तविक उद्देश्य भी यही है। इस सीमा तक यह समाप्त न किये जाने योग्य हैं। जिस तरह विचारों में, छाये के शाश्वेतचर, मानसिक व नैतिक विकास के लिए तरह तरह की सहायता लाभ, चार्ट, मायल, चित्र आदि की आवश्यकता होती है। तथा उसी प्रकार मृत्ति पूजा की आवश्यकता प्रारम्भ में पड़ती है ताकि नवोद्वितों का आध्यात्मिक, नैतिक और भावात्मक विकास सहज हो सके। आध्यात्मिक पुरुषों को चाहिए कि वे इस तथ्य को भलीभाँति स्पष्ट करें कि मृत्ति पूजा भी सबके एक ही ईश्वर का प्रतीक है तथा उसकी स्मृति अथवा ध्यान हेतु है। साधन है साध्य नहीं।

मुहम्मद ने भक्ति में लगभग 360 मृत्तियों को इसीलिये तुषारवाया बयोकि उन्होंने यह अनुमान किया था कि मृत्ति पूजा की अति के कारण तरह तरह के दुश्मनों के फैल रहे हैं। उस समय सेक्टें कबाले थे और प्रत्येक कबाले के पृथक देवता की मृत्ति। फिर भी उन्होंने
मानवीय हृदय की आवश्यकता की अनुमूल्य करते हुए, अब्राहम द्वारा बनवाये हुये काबा के मंदिर को सुरक्षित रखते हुये, इसे इस्लाम धर्मविवेकियों की पूजा का प्रमुख केन्द्र बनवाया। विश्व के किसी भी कोने के मुसलमान काबा की ओर मुंह करके ही इबादत करते हैं। काबा के पूजागृह की बनावट और पूजाविधि में भारतीय मंदिरों की अनेक समानतायें है। इसी तरह यहूदी लोगों का तीर्थस्थान जेरुसलम में है तथा ईसाइयों का बेबिलोहै।

विभिन्न धर्मों में माता और बालक की पूजा की सामान्य प्रवृत्ति भी पाई जाती है। हिन्दुओं में, यशोदा–कृष्ण, कौशल्या–राम। बौद्ध पंथ के अन्तर्गत चीन में बुद्ध को “वनान इम” नामक मौं के रूप में एक दिव्य बालक के साथ पूजा की जाती है। इस्लाम में, फातिमा ला बहसन–हुसैन, ईसाइयत में, मेक्सिको ला जिस्नु।

इसी के साथ–साथ, सभी धर्मों में न्यूनाधिक मात्रा में मूर्ति अथवा प्रतीकोपासना के होते हुये भी, अन्तरराष्ट्रीय सभी धर्मों में उस परम–तत्त्व को स्रुत्तल अरु से प्रवृत्त पर्यंत व्याप्त करता गया है, हृदय रूपी गुहा में विद्यामान बनाया गया है।

सभी धर्मों में, धार्मिक त्यौहार, जुलूस, पवित्र–दिवस, समारोह, लीलायें : सभी धर्मों में तरह तरह के प्रत्यक्ष लीलायें, पवित्र दिन, समारोह, राम–लीला, कृष्ण लीला, मौलुद, कथा, दुनिया, और लाजिया, महर्षि और मित्र–पक्ष, एकादशी, रामजन, लेंट आदि की समानतायें पाई जाती हैं। इसी तरह सभी धर्मों में कुछ विश्वास–दिवस रखे गये हैं, यथा, वैदिक धर्म में, सुखर पक्ष के पहले, आठवें और ध्यान–दिवस के। जुदावाद में शनिवार। इस्लाम में शुक्रवार। ईसाइयों में रविवार।

प्रसंगकथा यह बात भी दुर्दृष्टि है कि विभिन्न देशों में, विभिन्न युगों में, सभी प्रकार की ललित और उपयोगी कलाओं, कल्प, नाटक, नृत्य, संगीत लक्ष्मी रात्रिकलाओं, भवन–सड़क निर्माण, वृक्षारोपण आदि कार्यों का प्रेरणा उत्क्रम धर्म रहा है। यह बड़ी स्वाभाविक बात है कि यथार्थ धर्म ही प्रथम उत्तर भावनायें जागृत करता है जिसका प्रगतिन विभिन्न ललित कलाओं में होता है और जैसा कि नाना जाता है इसमें सत्य भी है कि, “विश्व ब्रह्म सत्वाच्छ भावना
है” और “यही धर्म का सार है” तो सभी उपयोगी कलाओं धर्म की ही अभिव्यक्ति है।

यदि सभी धर्मों के विशाल इतिहास, उदारमता और बुद्धिमत्ता व्यक्ति, जिनकी कमी नहीं हैं, परस्पर मिल बैठ कर धर्म के श्रेष्ठ मानों का चयन कर सकें, विशेषकर त्योहारों से और अपने—अपने अनुयायियों को प्रेरित कर सकें कि सभी हिल—मिल कर, इन सब त्योहारों की भावनाओं के साथ संयुक्त हों, इनमें शरीर हों, तो निश्चय ही ये सभी एक दूसरे के सम्बन्ध के लोगों के उत्साह में कई गुणा बुद्धि करेंगे और विशेषकर भारत में, ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा, साम्राज्यवाद की फैलावी गई विष बेलों के फंदों को काट सकेंगे।

धार्मिक संस्कार, पवित्रता करण : सभी धर्मों में विभिन्न संस्कार, सुनन, Sacraments (संस्कार रूप), Initiation (दीपक) आदि होते हैं, जिनका उद्देश्य, मस्तिष्क और शारीर को सुधारना और स्वच्छ करना होता है। यह एक प्रकार का पुनर्जन्म, नवदीर्घकरण, द्वितीय जन्म, पायन—पवित्रता करण, शोधन, तकदीद, उपनन्दन, नवजोत (जोरोस्त्रियन) होता है।

इन संस्कारों में विभिन्न प्रकार के स्नान, शौच वजू आदि होते हैं। जोरोस्त्रियन धर्मविलम्बी, पवित्रता को विस्फूरत मान्यता देते हैं। योग—दर्शन भी आयात्मिक और वाह्य शौच पर जोर देता है। विभिन्न धर्मों में इनका प्रयोग यही है कि मानव शारीरिक स्वच्छता के साथ—साथ मन से भी कुवियार, दोष—दर्शन, अन्य से घृणा न करें। मन, वचन और कर्म से पवित्र रहें।

ध्यान हेतु सहायक साधन : सभी धर्मों में उपासना के समय ध्यान की एकाधीता के लिये विभिन्न उपाय किये जाते हैं माला, तसबीह, जप करने की माला, आसन, मुद्रा, जय, शारीरिक अंग—संचालन आदि।

जप—ब्रत : सभी धर्मों में जय, अजकार, Litany (वचन—प्रार्थना), उपवास, रोजा, ब्रत, जागरण, शाब—बेदारी आदि की क्रियाओं होती हैं। इन एक एक ही उद्देश्य होता है, ईश्वर को हृदय में और हृदय को ईश्वर में स्थिर करना।

पशु व अनादि की आहुति तथा बलिदान : यह दुखद बात है कि, अपने अपने
धर्मग्रन्थों के गृहार्थ को विस्मृत कर, ऐदिक, इस्लाम, जुडावाद आदि धर्मों के अनुयायी यह मानने लगे हैं कि बिना रक्त बहाये अथवा पशु बलि के ईश्वर अथवा प्रेतत्त्वों को तुल्य नहीं किया जा सकता। जबकि सभी धर्म, मॉस्वर्जन, तर्क-ई-हैवानियत, तृणा-त्याग, नफस-कुशी, इंद्रिय-निग्रह और Self-denial के विचारों को सहज रूप में स्वीकार करते हैं, और इन्हें ही पूजा की उत्तम विशिष्टताओं मानते हैं। इतना ही नहीं पवित्र-दिनों में मॉस का वर्जन भी करते हैं।

वस्तुतः: पशु-बलि का गृहार्थ है कि मानव अपने में विद्यमान पशुल्य, अपनी निम्न प्रकृति, स्वार्थ-पद्धत, कामकुत्ता, कोश, धमन्ड, दरयोकरण और अहावादिता की बलि दे। ये सारे दुर्गुण ही विभिन्न पशुओं की विशिष्ट प्रकृति के प्रतीक हैं। ऐसे भी सभी धर्मग्रन्थ यह मान्य करते हैं कि मानव आधा पशु और आधा मानव है। इसके बाद भी मानव द्वारा अपने इन दुर्गुणों की बलि के स्थान पर इन अनौठे पशुओं की बलि देकर उनका स्वातंत्र्य सरकार करना और साथ ही यह कहना कि हम ईश्वर को तुल्य कर रहे हैं, यथार्थता से परे हैं। ऐसी बलि राम, रहमान, शिया या क्राइस्ट आदि एक ही ईश्वर को स्वीकार नहीं हो सकती। वह तो मानव के स्वास्थ्य, पशुल्य और उसकी निम्न प्रकृति की बलि ही स्वीकार करता है, यथा:

वाइबिल (मेथ्य) : "जाओ और जानो कि, इसचे क्या अर्थ हैं मैं बलि नहीं, करूणा-दया-चाहूँगा।" ...............मैंने बलि की नहीं दया की और जली हुई मेटों की नहीं वरन ईश्वर-ज्ञान की हिंसा व्यक्ति की है।" ..............."मैं बैल, बैंड अथवा बेकरे के खून से आनन्दित नहीं होता हूं। ऐसी व्यक्ति बलि युक्त अर्थित न करो। तुम लोग में, ऐसे जो भी लोग है, मैं उनकी प्रार्थनार्थ नहीं सुनता हूं, क्योंकि तुमहारे हाथ खून से सने हैं।" कुर्�आन (सूरा 22) : "उस (खुड़ा) तक, इन बलि चढ़े पशुओं का, न तो मॉस और ना ही खून,
पहुँच पाता है। अपने आप को पवित्र रखों, यही वह चीज है जो उस तक पहुँचती है।" योग और शुल्कुः : "दोनों कहते हैं कि आत्मा की उच्चत्वता के लिये खून-मॉस का सेवन न करना चाहिए।" अली : "जिन्हें मुहम्मद साहब का मलीका और प्रथम सूफी कहा जाता है, "अपने पेटों को पशुओं की कब्रगाह न बनाओ।"
वाह्य—चिन्ह : सभी ध्मों में अनुज्ञायी तरह तरह की पोशाकें, वस्त्र, चिन्ह अथवा प्रतीक धारण करते हैं। यथा, यज्ञोपवीत, क्रास, चांद तारा, तिलक, तलवार, टोपियाँ, साफे, जटा—जुट आदि। वस्तुतः ये विविध वाह्य चिन्ह, सुनदरता का विषय हैं। इन विविध चिन्हों के कुछ नौगोलिक, आध्यात्मिक और वैज्ञानिक कारण भी हो सकते हैं परन्तु वर्तमान समय में इन वाह्य प्रतिकों का जिस तरह धारण किया जाता है, अथवा ये वाह्याचार जिस तरह किये जाते हैं वे वस्तुतः एक दूसरे को भड़काने के लिये।

अथवा मानो यह वाह्याचार ही धर्म का सार हो। इन चिन्हों, प्रतीकों द्वारा एक दूसरे को भड़काने के पीछे वहीं, धर्मों के यथार्थ ज्ञान का अभाव और कुछ धर्मान्वादी सिर-फिरे नेताओं की शाह रहती हैं। वे अपने अनुज्ञायियों को मानवता, सदाचार और विश्व-ब्रह्माण्ड की शिक्षा देने की अपेक्षा, कृप्ताः, असम्मता और शान्ताः सिखाते हैं। यह भी कहते हैं कि जो इन चिन्हों, प्रतीकों, वस्त्रों को धारण नहीं करते हैं वे धर्म के राजा हैं और त्याज्य हैं।

ईश गृह : सभी धर्मावलम्बी अपने पूजा-स्थानों को ऐसे नामों से पुकारते हैं। जिनका एक ही अर्थ हैं, ईश्वर के गृह (बांध), देवालय (मन्दिर), बेत-उल्लाह (मस्जिद)। इन सभी पूजास्थानों में, स्वर्ग की ओर उठी हुई मानी जाने वाली, तथा स्वर्ग की आकांक्षा को दर्शाने वाली मीनारें, शिखर, कलश-शिखर, गोपुर मुनारा, ता-अरुम, गुम्बद, टावर, डोम, कृष्णपुला (गुम्बद) आदि होते हैं।

प्रार्थना के लिये पुकार : सभी धर्मों में प्रार्थना के लिये लोगों को एकत्रित करने के लिए, अजान, घंटा, बेल आदि का प्रयोग किया जाता है।

मृत्युतमाओं की शाँति—सुख के लिये श्रद्धाकर्म : सभी धर्मों में मृत्युतमाओं के लिये, प्रार्थनायें, मैसेस (रॉमन-कैथोलिकों की प्रार्थनाएं), फातिहा (चेहरसम), श्रद्धादि कर्म होते हैं। इसके साथ ही सभी मृत्यु—बोध, कान्द्वृतिस, फनरेल फोस्ट आदि होते हैं।

गुरु—शिष्य का आध्यात्मिक संबंध : सभी धर्मावलम्बी गुरु—शिष्य, पीर—मुरीद, सेन्ट—डिसाइपल के मध्य आध्यात्मिक संबंध मानते हैं।

[197]
साधु-संत : सभी धर्मों में, सन्तानी, यती, साधु, बैरागी, उदासी, मतदार्शी, महात्मा। फकीर, मिस्ट्री, विद्वान, बख्शीश, विश्वनाथ, सज्जाद-नन्दी, शेख, शेख-मुरशिद, सन्तकालखंड। मिय़ा, रहस्यमय, राम। एक्षोराइट, सेनोब्राइट गौर, नन नामदेव होते हैं।

सम्प्रदाय : सभी धर्म विश्वन  मत, धर्म, सम्प्रदाय, फिरकों में बंटे हुए हैं। वैदिक और क्रिष्णयन धर्म में इनकी संख्या सैकड़ों में गिनाई जा सकती है। यथार्थत: जितने नाम, सम्प्रदाय उतने ही पंथ, ऐसा महान धार्मिक पुरुषों ने चरितार्थ भी किया हैं, इन सबका एक ही उद्देश्य है, सर्वोच्च आत्मावाद के उच्च प्रकृति अथवा ईश्वर की अनुभूति-साक्षात्कार। किसी एक महान गुरु ने जिस भौतिक उसका साक्षात्कार किया वह उसी का प्रचार कर गया और सहस्रों मनुष्य उसी व्योम पर तत्त्व देखकर आगे बढ़े। परमुत्र कालान्तर में उसे मत-सम्प्रदाय में कुछ स्वाधीन लोगों ने आधिपत्य कर हिंसा, विद्वेष का प्रसार किया।

सामाजिक संगठन : यह माना जाता है कि, वैदिक धर्म में जाति-प्रणाली एक विशिष्टता है। यह प्रणाली अन्य किसी भी धर्म में नहीं पाई जाती। यह मान्यता न तो पूर्णता: असत्य है और नाही पूर्णता: सत्य। वस्तुतः धर्म विशेष से सम्बन्धित किसी भी सम्प्रदाय और सम्प्रदाय में, जाति प्रणाली के बीज, लक्षण, रूपरेखायें दृष्टिगोचर होती हैं, क्योंकि वे मानवीय, मन-शारीरिक, वैयक्तिक और सामाजिक प्रकृति में अन्तर्भूत हैं। वैदिक धर्म में इन बीजों के कोपल कुछ अधिक ही गूढ़ हो और अति के स्तर तक पहुँच कर अपने गूढ़ प्रयोजन से विलय हो गए। सभी धर्म, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कुछ विद्वानों और सामाजिक संस्थाओं को मान्य करते हैं ताकि सम्पत्ति, पारिशारिक जीवन, न्याय की व्यवस्था और लोगों की सुखा आदि को सुव्यवस्थित किया जा सके। वैदिक धर्म एक ऐसे सामाजिक बाँध की बात कहता है जो मानव जीवन के सभी परियों से, प्रत्यक्ष, विस्तृत और क्रमविद्या रूप से जुड़ी हो।

वैदिक धर्म द्वारा निर्धारित, वैयक्तिक-सामाजिक संगठन की योजना सम्पूर्ण मानव जाति पर सामान रूप से लागू हो रही है, जो मानव के कई प्रकारों के बीच न्याययुक्त
विभाजन करती हैं, यथा, "कार्यानुरूप पारिश्रमिक", श्रम और अवकाश, कठोर और सहज कार्य, अधिकारानुरूप कर्त्तव्य आदि आदारों के अनुप्रयोग के कारण, विशिष्ट कार्यों हेतु विशिष्ट कार्यकर्ता मिल जाते हैं। प्रत्येक की आवश्यकताओं निरिखत हो जाती हैं। प्रत्येक को उसकी प्रकृति और उसके विशिष्ट कार्यों के अनुरूप सुख-सुखियार, साधन प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। सभी को पर्याप्त कार्य-प्रेमण प्राप्त होती है और उनकी अहम और परोपकार से सम्बन्धित मूल प्रबृत्तियों का संरक्षण होता है। व्यक्तिवाद और समाजवाद का विवाद सुलझाता है।

वैदिक जाती प्रणाली (प्राण, क्षण, वैश्य, शूद्र) के प्रमुख सिद्धान्त के सार को विभिन्न चार-चार के समूहों के अनुसार ज्ञान जाना जा सकता है, जिनमें से कुछ प्रमुख समूह हैं।
1. प्रकृति और व्यवसायिक अभिपृत्ति के अनुसार चार प्रकार के मानव : ज्ञानी, कार्यवान, प्राप्ति-लाभ की इच्छा वाले एवं अविकसित मानसिकता और क्षमता वाले या श्रम-प्रधान।
2. चार प्रमुख व्यवसाय अथवा जीवन ध्येय : ज्ञान-विद्या, प्रशासकीय, व्यापार-वाणिज्य, उद्योग-श्रम।
3. जीवन की चार प्रमुख अवस्थाये : विद्यार्थी, गृहस्थ, गृहस्थ जीवन के शाखाओं और रोटी-रोजी से मुक्त, निम्नाधिक जन-सेवा, वैशाली-स्वास्थ्य।
4. राज्य की चार प्रमुख शक्तियाँ : ज्ञान-विद्या, सैन्य, वित्त, श्रम।
5. चार अधिकार – कर्त्तव्यों का समूह : (i) ज्ञान की प्राप्ति और विद्यार्थी, सम्मान, (ii) लोगों की सुसंस्कृत, न्याय-व्यवस्था, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति, सत्य और आदेश देने की शक्ति, (iii) उत्पादन और वित्तपन, सोना-चांदी की सेवा-सहायता का कर्त्तव्य, (i) ज्ञान, वि-पर्याय वाणिज्यिक और मनोविनोद की छूट, अज्ञानता के कारण तुलनात्मक रूप से हल्का दंड।

यह ध्यान रखना चाहिए कि उपयुक्त चार के समूह समूह अन्य समूह
भी गिनाये जा सकते हैं परन्तु यही पूर्णपूर्ण निर्धारित नहीं हैं। हाँ, ये गुण अथवा लक्षण, प्राधान्यता अवधारित रखते हैं। यह निर्धारित है कि प्रत्येक मानव के शरीर व मस्तिष्क में, सभी अवधारित व सभी प्रकार की कार्यक्षमता समान रूप से विकासमात है, परन्तु कोई किसी में प्रथियोग है तो कोई किसी में। यही कारण है कि कोई अत्यधिक अध्ययन नहीं कर सकता है तो कोई सफल सेवानिष्ठ होता है, कोई व्यापार व्यापिया में प्रचुर उन्नति करता है तो कोई बढ़िया अभिन्न होता है, जबकि मानव सभी हैं।

वैदिक धर्म में ऐसे ही आदर्श पर सामाजिक संगठन किया गया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, गूढ से निर्मित जाति प्रणाली को वर्णाश्रम धर्म की संज्ञा दी गई थी। जो महत्व शरीर के सिर, हृदय, हाथ, पैर आदि अंगों का होता है वैसा ही महत्व, इन्हें सामाजिक संगठन हेतु दिया गया था। परन्तु कालान्तर में इस वर्णाश्रम धर्म का स्वरूप बदलकर हो गया। स्वाध्य वरन कर्मो मुखर माना गया है।

वस्तुतः, शिख्या द्वारा प्रत्येक बालक-बालिका को यह सप्तदश देने व निखाने की आवश्यकता है कि ऊँचा-नीचा, अंगीर-गर्भं सभी में उसी एक आत्मा का निर्देश है जो सर्वव्यापी है, इसीलिए सभी लोग महान तथा सभी लोग साधु—ब्राह्मण हो सकते हैं। हमारा उच्च वंश का आदर्श अन्यथा देशवासियों के आदर्श से बिल्कुल मिलन है। आध्यात्मिक—एकता सम्पन्न, त्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श है।

सभी धर्मों में कुछ प्रतिकूल बातें: जहाँ तक सभी धर्मों के विभिन्न मत सम्प्रदाय, फिरकों की बात है इनमें कोई सार्थकता अन्तर नहीं है, ये सभी बाल एक ही कहते हैं परन्तु दीवारें उठाकर, जब कि देवी ज्ञान, दिवािन किस्मतों, सभी धर्मों की सार्थकता एकता के सूत्र के प्रकाश को इनकी दीवारें नहीं रोक पाती। परन्तु आज स्थिति बदलत हो गई है। प्रत्येक धर्म में काला जादू, या जातू-टोना, यातू, वाम-मार्ग, नूतन-प्रेर, जिन्हें आदि के चक्कर व वाममार्ग प्रचारित हो चले हैं। जिनमें तलह तस्क के गलत बिधि-विधान, पाश्चिम यौनिक, अर्थव्यवस्था अथवा अन्य की बलि, आदि ऐसी बातें परम्परा रही है जिन पर सत्तक दृष्टि रखने की आवश्यकता है। आरच्च तो यह है कि, स्वयं को धर्मनिरपेक्ष कहने वाले नेता आज
लालितों का सहारा लेते हैं। झूठे पादरी, बंडे, लालित, यामाचारी महानता का मुखोटा लगाकर लोगों को दिग्गजित कर देते हैं। ऐसे दिग्गजित लोग ही यह कहते फरते हैं कि हमारा धर्म ऊबा है और तुम्हारा नीचा, अन्य धर्मों के लोग मलैँच्च, काफिर, किद्र्मी, गैर-ईसाई आदि हैं। इनका दमन होना चाहिए, इनका उत्तीर्ण होना चाहिए, इन्हें अपने देश से निकाल देना चाहिए, इनसे युद्ध करना चाहिए, इनके पूजा स्थलों को अपवित्र या नष्ट कर देना चाहिए, आदि आदि।

महान सत्य पर पवित्र डालते हुये सिफ़, मेरा धर्म या तेरा धर्म की बातें करना,

महान भूत : सभी धर्मों में सत्य के अर्थ विभागन है। प्रत्येक धर्म का सामान्य मूल्य तो है ही, उसके कुछ पक्षों को विशिष्ट मूल्य भी हैं। मेरा धर्म जिस तरह मेरा है उसी भीति सर्वालम्बों का है, जो सर्वव्यापी आत्मा या जीवन तत्व से सम्बंध है। अतः यह सोचना कि मेरा धर्म ही केवल सत्य है, मेरे विचार और आचरण ही सभी हैं—ऐसे विचार उतने ही निम्न हैं, सभी धर्म जितने महान हैं। निसंकोच हो केवल अपने धर्म को ही महत्व देना, आत्म प्रवृत्तिना, बहुत बड़ी शक्ति बढ़ाना, मोहासिक, मायाजाल की भ्रान्ति आदि बातें अत्यंत तुच्छ और अत्यंत निम्न प्रकृति के अहंकार हैं। यह सोचना कि मेरा धर्म ही यथार्थ धर्म हैं, उचित नहीं हैं, क्योंकि सभी धर्मों का चरम सिद्धान्त है, “हम यही एक सत्ता हैं।” सभी धर्म परसपर शान्ति, प्रेम, बन्धुत्व, अहिंसा और सेवा का पात्र सिखाते हैं। “सर्वव्यापक मैं” से बड़कर क्या हो सकता है जो सारे ब्रह्माण्ड को समेटे हैं? “यथितवाद मैं” से शुद्ध क्या हो सकता है जो स्तव, मांस से नहाय अपने जन्म–मृत्यु, युग्मवृर्त और रोगों की दासता में जकड़ा रहता है? क्यों भी यह शुद्ध आत्मा उस महान आत्मा का अनुकरण करती हैं, क्योंकि सार–रूप में शुद्धात्मा ही महान आत्मा है। सभी धर्मों के सिद्धान्त, मंत्र आदि सार्वभौम हैं। इन पर शुद्धतम प्राणी का भी उत्तर ही अधिकार है जितना राम, रहीम, ईसा या बुद्ध का। विभिन्न धर्मों के ये सार्वभौम सिद्धान्त प्रकृति में शाश्वत रूप से विध्यमान हैं। यदि न्यूनतन का जन्म संसार में न होता तो भी गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त रहता ही। महान धार्मिक सिद्धान्त भी इसी भीति शाश्वत रूप से काम करते आ रहें हैं। अगर वेद, कुरान, बाइबिल न भी होते
तो भी ये नियम रहते ही। अर्थ: हमें अपनी असीमता को पहचान कर सीमित न होना चाहिए।

व्यक्तिवादी होना, सर्ववादी होने की उच्चावस्था से पतन है। खुदी में खुदा का घर नहीं
अपने को मात्र जीव मानना ब्रह्म को अस्वीकृत करना है। अपने को सीमित मानना ही
नास्तिकता है।

इन सभी गलतियों का कारण अज्ञान है: धर्म की अनमोल धरोहर से बालकों को परे
रखना धर्मनिरपेक्षता को शुद्ध और हानिकारी बना देता है। धर्म शिक्षा के अभाव से भ्रातियों
ही अधिक पैदल हैं। हम गलतियाँ इसलिए करते हैं क्योंकि हम दुर्बल हैं, दुर्बल इसलिए
है कि अज्ञानी हैं। हमी आने हाथों से अपनी आँखों को ढेर हुए हैं और कहते हैं अंधेरा है।

मनुष्य की आत्मा रचनाय से ही सत्य-प्रकाश है। आधुनिक वैज्ञानिक, क्रम विकास का
कारण बताते हैं—इच्छा। जीवनार्थ कुछ करना चाहता है, परन्तु परिस्थिति को अनुकूल नहीं
पानी पर नये शरीर का निम्नाण कर लेता है, अपनी इच्छाशक्ति से। इच्छाशक्ति, वर्गशक्तिमान
है। मानव सब कुछ इसलिये नहीं कर पाता क्योंकि वह सदैव अपनी आत्मा को शुद्ध मानता
रहता है अपने को शुद्ध मानना ही नास्तिकता है। प्राचीन धर्मों ने कहा, नास्तिक यह है जो
ईश्वर पर विश्वास नहीं करता। धर्मों की सार्वभौम—एकता कहती है, नास्तिक यह है जो स्वयं
में विश्वास नहीं करता, पर यह विश्वास केवल इस शुद्ध "मैं" को लेकर नहीं है, इस विश्वास
का अर्थ है—सबके प्रति विश्वास। आत्म—प्रति का अर्थ है सब प्राणियों से प्रति, क्योंकि
हम सब एक हैं। यदि सभी धर्मों द्वारा मान्य इस आत्म—विश्वास का विस्तृत रूप से प्रचार
होता और वह कार्यरूप में परिवर्तित हो जाता तो निश्चय ही संसार की अनेक बुराइयों और
दुखों का बहुत बड़ा भाग आज तक मिट गया होता। ऐसी अनन्त शक्ति सभी धर्म प्रदान
करते हैं।

सभी धर्म शब्दांबर रूप से दूर रहने की सलाह देते हैं: धर्म ग्रंथों के शब्दों के कुदर्ती
निकालने के कारण ही रोमन—प्रॉटेस्टेंट सम्प्रदाय के मध्य यद्द हुए। वैदिक धर्म के विरुद्ध
युगाधिकारी आदोलन हुए और बौद्धवाद, जेनवाद, अह्नेतवाद, बववाद, कबीर पंथ, सिखवाद,
आर्यसमाज, ब्रह्म समाज आदि का जन्म हुआ। इस्लाम में जब लोगों ने शब्दांबर फैलाया
तो मोहम्मद सल्ल ने स्वयं साक्षात किया और पश्चात सुनीवाद, सुनीवाद, सियावाद, अहल-इहदीसवाद आदि का प्रारूपगाव हुआ। धर्मग्राम में चर्चा कहते हैं, शब्दों को ही कस कर मत पकड़ो ये मृत्युदंड हैं, आत्मा को पकड़ो वह अनन्त जीवन हैं।

सबमें व्याप्त जीवन को अपना जीवन ही समझों, उसी में जियों और उसी के लिये मरों। मानवता के महान शिक्षकों ने यही सलाह दी है कि जब सभी प्रकार के अहंकार छोड़ने की प्रारूपक सहायता करो तो सभी कर्म उसे अर्पित करो, प्रकाश और मार्ग-दर्शन के लिए प्रार्थना करो, फिर प्रत्येक कार्य उसका आदेश मान कर करो, उसी के नाम पर, उसी के लिए।

ज्ञान और भवित, कर्म के बिना निष्ठाल हैं: सभी धर्म, भवित , ज्ञान और कर्म में समस्या नहीं। सर्वाधिक आत्मा के समक्ष अपने को भवित पूर्वक अर्पित कर देना फूँकता उैक परंतु पर्याप्त नहीं। भवित, ज्ञान पूर्वक तथा कर्म—युक्त हो तभी यथार्थ और पूर्ण भवित होगी। हमें, सर्वाधिक आत्मा या इश्वर की व्यापकता, असीमता तथा उसके आनन्द का, ज्ञान होना चाहिये। तब हमारा प्रेम और गरहन होगा। और फिर, यदि हमारा प्रेम पूर्ण और सच्चा है तो हम अवस्था ही उसकी इच्छानुसार कर्म भी करना चाहेंगे। और यह कर्म हमें हमारे स्वरूप का और भी अधिक परिचय देगा और हमारे इश्वर—प्रेम का और भी बढ़ाएगा।

इस तरह उसकी इश्वरानुभूति प्रवृत्त हो जाने पर, उसके द्वारा किये जाने वाले कर्मो से यह भासित होना लगेगा कि जगत की सारी चेतन—अचेतन वस्तुओं एक ही हैं और बन्धुत्व के डोर से बंधी हैं। हमें उसके कर्म ही उसकी भवित के साक्षी होगे। तथार्थ ज्ञान और भवित का परिणाम होने पर यदि उनसे सदृश मूर्ति पुनः नहीं उत्पन्न होता तो वे बांछ ही जाने जायेंगे।

वैदिक (गीता) : का आयार हैं कि भवित, ज्ञान—पूर्वक तथा कर्म—युक्त हो, हमें ज्ञान होना चाहिए कि इश्वर का स्वरूप कितना विशाल, असीम तथा आनन्ददायक है। तब हमारा उस्के लिये प्रेम और बलशाली होगा और फिर यदि हमारा प्रेम चाहेंगे। और ऐसा हमें इश्वर के स्वरूप का और भी परिचय देगा और हमारी भवित प्रेम को और भी बढ़ाएगा।

बाईबिल (कोरिक्षियनस) : "खतना करना या न करना महत्त्वहीन है परंतु इश्वरादेश के
अनुसार कर्म करना ही सर्वस्व है।... यह जो तुम में से महानतम हो उसे तुहारा सेवक भी बनाना होगा।” हदीस : “जाति का नेता यही है जो जाति की अत्यन्त सेवा करता हो।”

इस तरह सभी धर्म कहते हैं, हमें हर दशा में कर्मयोग (कर्म) करना चाहिए परन्तु केवल भोग अथवा स्वार्थ की भावना से नहीं चर्चा अपना कर्मयोग (कर्म) ईश्वर को अर्पित कर या
त्याग की भावना से और इस तरह का त्याग भी नैतिकता का समृद्ध बन जाता है।

सभी धर्मों में, योग, शुलुक Mystic, और Gnostic आदि विशेष ज्ञान है: जो भ्रम या ईश्वर की ओर वापस ले जाते हैं। सभी धर्मों में ये प्रायः आठ अंगों में विभाजित हैं। भ्रम
अथवा गहन आह्वान से सम्बन्धित इन अंगों साधनों के बीच, सत्योपासना, नमाज
tथा प्रेयर आदि में बृहे हुये हैं। अंगों योग या साधनयों हैं: यम, निधम, आसन, प्राणायाम,
ध्यान, प्रत्याहार, धारण समाधि। तहजीन—नापस, तस्फीया—इ—दिल, मुजाहिद, हठस—इ—दम,
मुराकिबा, मुकासिफा, मुसाहिदा, मुआइना। Vow of Abstinence, vow of observances,
Restraint of limbs, Control of breath, Abstraction of Mind,
Contemplation, Absorption. बौद्धवाद (चीन—जापान) : में क्रमशः “चान और चेन”
शब्दों का प्रयोग ध्यानके लिये किया जाता है।

इन साधनों अथवा ज्ञान में ईश्वर के प्रत्येक नाम का सम्बन्ध, किसी भाव, खद्रा,
इमोशन, मुटा या फोर्त से होता है। किसी नाम पर थित स्थिर करने के लिये, जप जिज़क़,
लिटेनी का सहारा लिया जाता है और वह नाम अपनी प्रकृति अथवा शक्ति को प्रकट कर देता है।

सभी धर्म अन्तऽगा एवं यही घोषित करते हैं कि, यही सम्म, हम—ऊ—स्त, सर्वं खलु
इदम् ब्रह्म, आल इत गाद, “मैं ही सर्वध्याय प्रभुमाण्ड हूँ।” इसी कारणवश यह सभी धर्मों
में है और सामूहिक रूप में, मानव ईश्वर ही है। अतः अपने साध रहने वाले मानवों की सेवा
करना, आस्तिकों के लिये, ईश्वर की सेवा करना है। नास्तिकों के लिये, मानवता की सेवा
करना है। यही धर्म पालन हैं, यही सत्यज्ञान हैं, प्रेम और भक्ति है, यही वरेश्व—कर्म है, यही
नैतिकता है और इसी में धर्मनिरपेक्षता है।

[204]
सभी धर्म स्वयं निरपेक्ष हैं: ये धर्म न तो एक दूसरे धर्म की निदान करते हैं और ना ही केवल अपने को सत्य कहते हैं। सभी धर्मग्रन्थों ने अपने से पूर्व धर्म व पैगम्बरों आदि को सत्य कहा है। सभी ने, पाखंडी पुरोहितों, पादरियों, मौलिकों से साक्षात्कार रहने को कहा है, शब्दावधारों से दूर रहने की सलाह दी है। समान साम्प्रदाय सिद्धांतों का उपदेश दिया है, वाह्याभावों और कर्मकाण्डों को गौण बताया है। सभी ने सदाचार और नैतिकता की समान शिक्षाये दी है। सभी की शिक्षाओं में ज्ञान-भक्ति और कर्म के मार्ग हैं और इन मार्गों का समर्थन सभी अतिवाद से विवाह रहने को कहते हैं। सभी आत्मा, प्राण या रूप को सर्वोच्च तत्व और अज्ञान जनित अहंकार को सारी अनैतिकताओं-दुराइयों की जड़ बताते हैं। जब, ज्ञान मार्गी अहंकारवश अपने को सर्वशक्तिमान बताता है, भक्तिमार्गी अपने ही आराध्य को सच्चा और अन्यों के आराध्य को मूडा बताया है और कर्म मार्गी जब अपने छोड़-पाखंड और वाह्याभावों की ही सर्वशक्त मानता है तो वस्तुतः ऐसे लोग अपने कथन की पुष्टि में कोई धर्मग्रन्थ प्रस्तुत नहीं कर सकते। वस्तुतः धर्म नहीं, इनके स्वार्थ और अहंकार ही आगे रहते हैं। संवेदनिक धर्मनिरपेक्षता की अपराधणा भी एक प्रकार से उन अहंकारों को त्याग देने की बात कहती है, जो कहते हैं, मेरा धर्म ही राजधर्म हो, केवल मेरे धर्म की ही शिक्षा दी जाये, मेरे ही धर्म और उसके कर्मकाण्डों पर राज्य के विधि-विधान निमित किये जाये। ऐसे अहंकार भरे सोच, सभी धर्मों की समान सार्वभौम शिक्षाओं अथवा किसी भी विशिष्ट धर्म की यथार्थ शिक्षाओं से अनमित होने के कारण उपजते हैं।